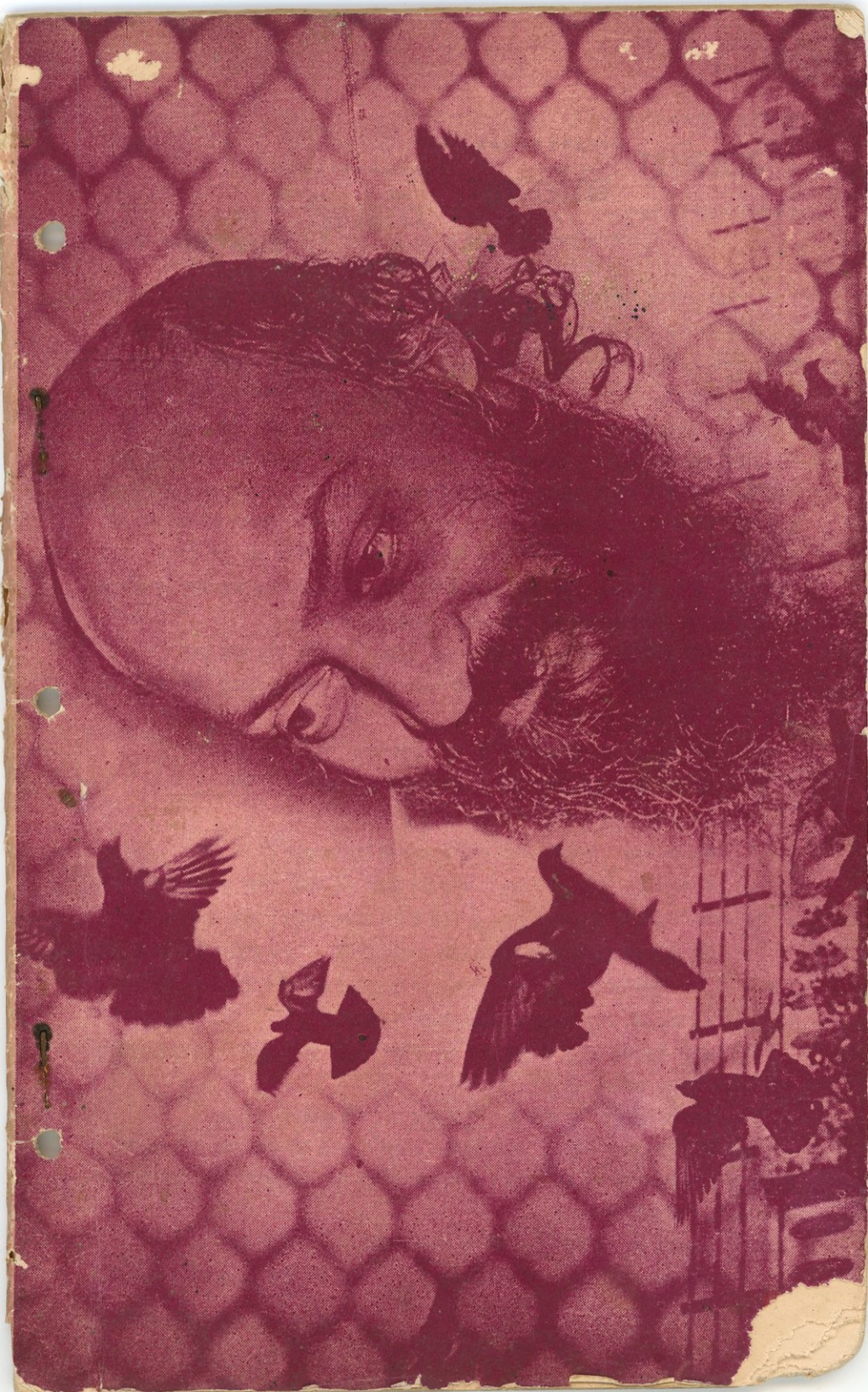

रजनीश बोधिवृक्ष मौलश्री

मा योग क्रांति

जीवन में कुछ क्षण ऐसे होते हैं, जिनकी स्मृति मात्र से हृदय पुलकित हो उठता है। ऐसी ही एक रहस्योद्घाटन की घटना आप सबको कहे बिना मन मानता नहीं है। यह घटना ऐसी है, जिसे जानने को न जाने कितने हृदय लालायित हैं। भगवान् को ज्ञान की उपलब्धि कब हुई, इसे जानने को कौन उत्सुक न होगा। सभी के मन में इसे जानने की अभीप्सा तो होती ही थी। कितने मित्रों ने मुझसे पूछा, किन्तु मैं स्वयं ही जानती नहीं थी, किसी को क्या कहूं। भगवान से मैंने कभी इस बाबत जानने की इच्छा ही प्रगट नहीं की। जब कोई मुझसे पूछता तो मन में विचार आता कि उनसे पूछ लूं; पर कभी पूछा नहीं। कल रात, २७ नवम्बर, १९७२ को इतने दिनों से जिसे जानने की जिज्ञासा थी, वह मुखर हो उठी। रात्रि के करीब साढ़े ग्यारह बजे थे। भगवान श्री दूध पीकर अपने बिस्तर पर सोने चले गये। मैं भी जाकर लेट गई। लेटते ही अचानक मन में खयाल आया पूछने का कि '***भगवान को ज्ञान कब हुआ।***'

जैसे ही विचार आया मैं एकदम पूछ बैठी : "आपको ज्ञान कब हुआ ?"

भगवान हंसे .... हंसते हुए ही बोले : "लोग पूछते हैं तुझसे या तुझे ही स्वयं जानने की प्रेरणा हुई है ?"

मैंने कहा : "दोनों बातें सच हैं, आप बताइये।"

भगवान फिर हंसे कहने लगे : "फिर कभी बताऊंगा।"

मैंने कहा : "मुझे आज ही जानना है।"

उन्होंने कहा : तू खुद सोच, तुझे खयाल में आ जायगा।"

मैं थोड़ी देर चुप रही। उसके बाद मैंने कहा : "मुझे ऐसा लगता है कि २१ या २२ साल की उम्र में जब आप इंटर में पढ़ते थे उस समय आपको ज्ञान उपलब्ध हुआ।"

मैंने जैसे ही इतना कहा भगवान ने गम्भीरता से : "२२ नहीं २१ साल की उम्र में।" फिर मुझे तारीख और सन् जानने की उत्सुकता हुई और मैंने उनसे यह पूछा।

भगवान श्री बोले : '***२१ मार्च सन् १९५३ में।***'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद मैंने पुनः पूछा "किस जगह हुआ ? क्या उस दिन कुछ विशेष घटना घटी थी ?"

भगवान बोले : "तू याद कर, तुझे सब याद आ जायेगा।"

मैं शांत होकर लेट गई, तभी मुझे २० साल पहले की एक रात याद आ गई। मैंने कहा : "जिस रात १२ बजे उठकर अचानक आप मुझसे कहकर चले गये थे और रात को ३ बजे लौटे थे।"

भगवान श्री बोले : "तूने एकदम ठीक पकड़ा—ठीक उसी रात ...."

मुझे आश्चर्य हुआ कि मैं जो देख पा रही हूं, क्या वह सच है। भगवान उसे कह

(शेष कवर ३ पर)

११ दिसम्बर १९७२

८२ वें जन्म-दिन पर जीवन की
अमृत ज्योति के अलोक दाता एवम्
परमात्म-आनन्द के स्रोत भगवान रजनीश
को देश के समस्त जीवन जागृति केन्द्रों के
प्रेमियों की ओर से

शुभकामनाएं एवम् हार्दिक अभिनन्दन

युक्रांद जन्म-दिवस विशेषांक

दिसम्बर १९७२

जन्म-दिवस
पर उस असीम
अनन्त को जहां
सभी कुछ मात्र
आनन्द, नृत्य
और लीला
है।

"हे भगवन्!
मुझे अपने चरणों में ले लो
मुझमें इतनी सामर्थ्य कहां
कि मैं खुद तुम तक आ सकूं!!"

११ दिसम्बर, १९७२ श्री रजनीश जी के ४२ वें जन्म-दिन पर
स्वामी अगेह भारती के इन भाव-सुमनों के साथ
मा योग मीरा, जूनागढ़ के शत-शत वन्दन!

एक चिन्मय ऋषि : रजनीश

भगवान श्री रजनीश पूर्ण जाग्रत एवं ज्योतिर्मय हैं
वे समस्त विश्वसत्ता से, असीम से, अनन्त से एक हो गये हैं
वे हैं ही नहीं
वरन अनंतता, असीमता ही उनमें श्वास लेती है
वे कोई व्यक्ति नहीं हैं
बल्कि परमात्मा ने ही देह धारण की है—उनके रूप में
देहातीत सत्य हर पल उनमें प्रज्वलित होता रहता है
उनकी आंखें, उनकी अंगुलियां, उनके हाव-भाव, उनकी हंसी, उनकी मुस्कुराहट
समस्त के पार से—देहातीत से संदेश लाती है
वास्तव में, वे ब्रह्म-चेतना में नहीं जी रहे हैं
वरन ब्रह्म-चेतना ही वे हो गये हैं
इससे भी आगे—
ब्रह्म से भी आगे—
'होने', 'न-होने' के पार—
'नहीं' में
महाशून्य में
निर्वाण में
वे खो गये हैं

★

आज ४२ वां जन्म-दिन है
उनकी इस देह का
मनाते हैं उत्सव हम
ताकि
कभी खयाल आ सके
उनके स्वरूप का
अपने स्वरूप का
देहातीत !
गुणातीत !!

★

● *स्वामी योग चिन्मय*

न रो त्त म

● *स्वामी*
अमृत परमहंस

भाषा में—
तेरे प्रति,
शब्द भटक
जाता है !

जकड़ लेती है—
असमर्थता,
जब, स्वर कण्ठ में
अटक जाता है...!

तू जिये
अनंत-अनंत वर्ष,
क्या पर्याप्त है इतना ?
तू अमर है, अजर है,
अति कम है—
कहूं जितना ... !

हो जाता है—
अनर्थ,
'न' कहने की
असमर्थता में,
अर्थ छिटक
जाता है ... !

सम्मिलित अवतरण

* * * * * * * * * * * * * * *

कल कोई यह न कहे कि संसार में इतना तनाव, इतना उत्पाद, इतना संघर्ष व इतना पाप हुआ और भगवान नहीं आया।

इस बार पुनः एक दिव्य चेतना, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, जीसस और लाओत्से की आत्माओं को लेकर एक साथ एक व्यक्तित्व में अवतरित हुई है।

इस बार फिर कोई, वही पुरानी गलती न दोहरा दे।

फिर कोई ईसा को सूली लगाने की कोशिश न करे,

फिर कोई महावीर के कानों में गरम-गरम सीसा उड़ेलने की हिमाकत न करे,

फिर कोई दयानन्द को जहर पिलाने का उपक्रम न करे,

फिर कोई गांधी को गोली मारने की कुचेष्टा न करे,

फिर कोई मीरा का कठिन इम्तहान न ले,

फिर कोई कैंसर जैसी भयानक बीमारी रामकृष्ण को न सताये,

फिर कोई गंगा रामतीर्थ को अपनी गोद में सुलाने की कृपा न करें।

इस महान व्यक्ति को, इस महान चेतना को, इस नये अवतरित बुद्ध को अपनी इच्छानुसार लोक कल्याण का पथ प्रशस्त करने दें। कोई दीवार न बने, कोई इस प्रवाह को न रोके! बहने दो इस आत्मा की इन उनमुक्त जीवन-तरंगों को अपनी मौज में। और देखते रहो तमाशा, दुनिया में क्या होता है, कैसे एक नई जाग्रति आती है। कैसे एक नया धर्म, मानव धर्म उदित होता है, कैसे पुराने गले-सड़े धर्म, पुरानी सड़ी-गली बेकार-सी मान्यताएं, जो मनुष्य जाति पर बोझ बन चुकी हैं, अपने आप तिरोहित होती हैं। जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार जाने कहां विलीन हो जाता है, एक नई लहर

आएगी और सारे संसार का विषाद, दुख, संताप बहा ले जायेगी। जो भी जानेगा वो पायेगा कि जो कुछ भी आचार्य श्री ने कहा वो सनातन सत्य है और अद्‌भुत है। सारी दुनिया, समझदार लोगों की दुनिया, जीवन के सत्यों को जानने वालों की दुनिया जानेगी कि रजनीश क्या हैं। सत्यान्वेषण के पथ पर चलने वालों के काफिले यह सहर्ष स्वीकारेंगे कि :

रजनीश—

कृष्ण का कर्मवाद, बुद्ध का निर्वाण, ईसा का प्रेम, महावीर का त्याग, शंकर का अद्वैतवाद, रामकृष्ण का भोलापन, विवेकानन्द का वेदान्त, रामतीर्थ की मस्ती, दयानन्द का वेद ज्ञान और अन्त में एक नया वाद, अपना ही नया वाद अद्‌भुत रजनीश-वाद लेकर अवतरित हुए हैं। हां, मैं रजनीश के नूतन विचारों को रजनीश-वाद ही कह रहा हूं।

रजनीश सारी दुनिया को आलोकित करने, हाथ में अनन्त-सत्य का, प्रेम का, प्रकाश का, दीपक लेकर अवतरित हुए हैं और गांव-गांव, गली-गली घूम रहे हैं, ताकि कोई भी आत्मा जो मुक्ति चाहती है, निर्वाण चाहती है वो लक्ष्य को प्राप्त हो सके, अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर हो सके। और उन सत्यों से परिचित हो सके, जिन्हें वो भूल चुकी है और जिन्हें इसी स्तर के लोग पहले भी कई बार अपनी-अपनी भाषा में, अपने-अपने देश में कह चुके हैं, कई बार वेश बदल-बदल कर दोहरा चुके हैं।

रजनीश का अवतरण सार्थक हो सकेगा अगर आप में से, आपके परिवार में से, आपके शहर में से एक भी व्यक्ति रजनीश को समझने में समर्थ हो सके, और साथ ही यह मेरा सुझाव भी है कि रजनीश को समझना ही लोक कल्याण के लिए हितकर है। रजनीश की आवाज पृथ्वी के हर कोने में, हर व्यक्ति, हर प्राणी, हर वनस्पति, हर कंकर-पत्थर, यहां तक की मृत आत्माओं तक भी पहुंचानी चाहिए।

ताकि फिर कल कोई यह न कहे की इतना तनाव, इतना दुख, इतना पाप, दुनिया में हुआ, और भगवान नहीं आया।

डा० आर० रमन
(हाउस नं० २८८/२० ए, चण्डीगढ़)

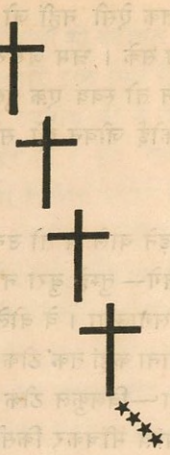

हम दीवाने...!

• *स्वामी चैतन्य बोधिसत्व*

आज मेरे एक मित्र अजमेर से आये थे। मेरे अभिन्न मित्र हैं बचपन के। एक दो महीने में आते रहते हैं। बम्बई जाते हैं ड्यूटी पर। रास्ते में मुझसे भी मुलाकात हो जाती है। जब भी मिलते हैं सब बातों के साथ रजनीश-चर्चा हो ही जाती है। बल्कि, काफी समय से, मिलने पर अधिक समय रजनीश-चर्चा ही होती है। वे कोई न कोई सवाल उठा देते हैं और फिर चर्चा चल निकलती है। उन्होंने भी बहुत-सी पुस्तकें पढ़ी हैं रजनीश जी की और काफी उन्हें जंची भी। परंतु फिर भी मुश्किलें आसान न हो पाईं। पुस्तकें कब किसकी मुश्किल आसान कर पाई हैं। बल्कि सच तो यह है कि

पुस्तकें मुश्किल और बढ़ा जाती हैं, क्योंकि कोई भी पुस्तक ऐसी नहीं जो कि जीवन के अनुकूल हो अथवा जीवन की गुत्थी को सुलझा सके। भ्रम जरूर हो जाता है कि गुत्थी सुलझ गई पर सुलझती नहीं। जीवन तो स्वयं एक पुस्तक है जिसे अलग से पढ़ना पड़े, समझना पड़े। पुस्तकों से कोई जीवन को समझ सके, मुश्किल ही नहीं, असंभव है।

हां तो बातों ही बातों में आखिर जब हम बिछुड़ने वाले थे तो उन्होंने एक बात कही। उन्होंने बात ठीक ही कही थी। कहने लगे—तुम्हें बुरा न लगे तो एक बात कहूं? मैंने कहा—अवश्य कहें, बुरा नहीं लगाऊंगा। वे बोले—कि बाकी तो सब ठीक है, परन्तु किसी को किसी का दीवाना कहां तक ठीक है? किसी के पीछे पागल नहीं हो जाना चाहिए। मैंने कहा—बिलकुल ठीक है। सच ही किसी के पीछे पागल नहीं हो जाना चाहिए। आंख मींचकर किसी का दीवाना नहीं हो जाना चाहिए। परन्तु यह भी ठीक है कि कोई अगर हमें देखेगा तो उसको ऐसा ही लगेगा कि हम रजनीश के पीछे पागल हैं, उनके दीवाने हैं। परन्तु ऐसा है नहीं। इसको थोड़ा समझना पड़ेगा।

कोई हमें देखेगा तो उसे यही लगेगा कि हम लोग रजनीश जी के पीछे पागल हैं। सारे समय उन्हीं का साहित्य पढ़ते हैं। किसी और चर्चा में रस नहीं लेते। उनके बताए मार्ग से साधना करते हैं। लोगों से कहते हैं कि तुम भी ऐसे-ऐसे ध्यान करो। कहते हैं कि रजनीश जी की किताबें पढ़ो, उनके प्रवचन सुनो, टेप प्रोग्राम में चलो। जब ऐसा करते हैं तो स्वाभाविक ही है कि तुम्हें लगे कि हम उनके पीछे पागल ही हैं। मैं औरों की बात तो नहीं जानता, परन्तु अपनी कहूं। जीवन के छत्तीस सालों में बहुत किताबें पढ़ीं—बहुत-सा साहित्य पढ़ा अंग्रेजी व हिन्दी का। एम० ए० की परीक्षा भी पास की। दुनिया भर की चर्चा भी की। पर कुछ जाना नहीं। कभी कोई प्रकाश की किरण उतरी नहीं। कभी कोई किनारा नजर आया नहीं। मन बहलाने के हजार साधन किये पर मन बहला नहीं। पर आज मन बहलाने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती। उसकी जरूरत नहीं। क्योंकि मन बदल ही गया है। क्योंकि अब बोरडम ही नहीं लगती। जो साधन मनोरंजन के होते हैं या हो सकते हैं वे सब एकदम बेकार हो गये हैं। इसका मतलब यह नहीं कि हम उन साधनों के विरोध में हैं या उनसे घृणा करते हैं; परन्तु ऐसा कुछ हो गया है कि हम बोर ही नहीं होते कि मन बहलाने के लिए कहीं जायें या कुछ करें। और ये सब

रजनीशजी की बदौलत हुआ है। उनके बताये मार्ग पर चलने से हुआ है। इसलिए जो हमारे इष्ट मित्र हैं, अभिन्न हैं, हम पर विश्वास है, उन्हें हम कहते हैं कि चलो रजनीश जी के टेप सुनने, पढ़ो रजनीश जी की किताब, आओ साधना शिविर में। इस सबका कुल कारण इतना ही है कि शायद प्रवचन सुनकर, अथवा किताब पढ़कर शायद तुम्हारे मन में उत्साह पैदा हो जाये और तुम भी कभी रजनीश जी के साधना शिविर में पहुंच जाओ और शायद घने अंधकार में कोई विद्युत-किरण भूल से चमक जाये, तो फिर तुम अपने से ध्यान में जाने लगोगे जो कि एकमात्र मार्ग है— जानने का, ज्ञान का। अब तुम उसे जान जाओगे। अब स्वयं तुम्हारे पास अनुभव होगा। हो सकता है, बल्कि होता ही है कि हम वापस लौट जाते हैं और फिर अपने को अंधकार में घिरा पाते हैं। परन्तु तब फिर एक फर्क हो जाता है। अब हमें पता तो हो गया कि प्रकाश भी है। यदि एक बार पता चल गया तो अब चुप बैठना मुश्किल है। अब साहस आ जाता है उसको पूरा पा जाने के लिए प्रयत्न करने का।

तो ऐसा हो सकता है कि बाहर खड़े लोगों को ऐसा लगे कि हम दीवाने हैं रजनीशजी के, पागल हैं रजनीश जी के पीछे। पर उन्हें पता नहीं कि हम न रजनीशजी के पागल थे और न हैं। हां उस प्रकाश के, उस आनन्द के जरूर पागल हैं, जो कभी उनकी कृपा से, उनके मार्ग से, उनके दर्शन से, उनकी दीक्षा से हमने जाना है। हम अवश्य दीवाने हैं **उनकी पुस्तकों के, उनके प्रवचनों के जिनमें हमने अपने को खुलते पाया, चिथड़े-चिथड़े होते देखा और जाना कि हमारी असलियत क्या है। सच तो ये है रजनीश जी पूरे वक्त अपने प्रवचनों में कह क्या रहे हैं—वे हमें अपने को, जैसे कि हम हैं, खोल-खोलकर बतला रहे हैं कि ये हो तुम,** ये हैं तुम्हारे दुख, तुम्हारी विक्षिप्ततायें और ये हैं उनके कारण। ये रजनीशजी का ही प्रेम है, उनकी अत्यधिक करुणा है; वरना उन्हें क्या पड़ी जो कि वे बताते फिरें ये सब। किन्तु हम कहां समझ पाते हैं फिर भी! कहां नींद टूट पाती है हमारी! हमारी जड़ता कहां नष्ट हो पाती है! हम तो लौटकर फिर वैसे ही हो जाते हैं जैसे कि पी० टी० मास्टर सारी पी० टी० कराने के बाद कह देता—एज यू वर और हम अपनी पूर्व स्थिति को पहुंच जाते। परन्तु फिर लौटकर जाते टेप सुनने, प्रवचन सुनने, साधना शिविर में ध्यान करने कि शायद इस बार हमारी तन्द्रा टूट जाये, शायद हमारा अनुभव गहरा हो जाये, शायद जो झलक एक बार देखी, हमेशा के लिए प्रकाश में परिणत हो जाये। और हर बार हम पहले से अधिक जानकर, अनुभव करके

ही लौटते हैं। परन्तु यह सही है कि दूसरों को हमारा यह सब करना हमारा दीवानापन ही लगेगा, पागलपन ही मालूम पड़ेगा। इसमें उनका दोष नहीं।

एक बात और है। इसको एक पहलू से और समझ लें। चलो, जो तुम कहते हो वह ठीक भी है कि हम दीवाने ही हैं, पागल हो गये हैं, यदि ऐसा भी है तो इसमें ऐसा बुरा क्या है? गलत क्या है? शायद इसके उत्तर में तुम यह कहो कि नहीं, किसी के पीछे पागल होने में, दीवाने होने में हमारा अपना व्यक्तित्व तो कुछ भी न रहा। हमारी अपनी तो बुद्धि ही न रही। हम तो अन्धे ही हो गए। हमारा अपना कुछ भी न रहा।

ठीक है, बिलकुल ठीक है। परन्तु मैं तुमसे पूछता हूं कि हमारा अपना है क्या? जानें तो, क्या है हमारा अपना? क्या है जिसे हम कह सकें कि हमारा है। यह शरीर हमारा अपना नहीं। न हमने इसे बनाया, निर्मित किया। हमने इसे पाया, जैसा यह बना, बना। हमारे यह बिलकुल भी काबू में नहीं। यह अपने से जन्मा, जवां हुआ, अब वृद्ध हो रहा है और एक दिन मरेगा। हम कुछ भी तो न कर सके। तुम कहते थे अभी कि दांत में दर्द है दो दिन से। रोक लेते दर्द को, न होने देते। पर नहीं, हमारे बस का शरीर में कुछ भी नहीं है। यह श्वास भी अपने से आ रही है, जा रही है। यह भी जब तक आ रही है, आ रही है। जब न आयेगी तो हम कुछ भी न कर सकेंगे। ये दिल की धड़कन भी अपने से चल रही है। जब रुकेगी तो कोई डाक्टर इसे फिर से दोबारा न चला सकेगा।

क्या है हमारा? यह ज्ञान? यह भी दूसरों से आया है। किसी किताब से, गुरु से, शास्त्र से, संस्कार से, माता-पिता से। हमारा अपना तो कुछ भी नहीं। सब उधार है। हमारा अपना कहां है?

धन? वह पहले से ही नहीं है। अगर वह बस में होता तो हम भी लखपति कब के बन गए होते। हमने तो बहुत चाहा पर वह नहीं आया, सो नहीं आया। जिनके पास है, वह भी उनका नहीं। उनको भ्रम जरूर है कि उनका है जैसे कि हमको भ्रम है कि यह शरीर हमारा है।

तो फिर कुछ भी हमारा नहीं है, तो किसे बचाने की बात करते हैं। हां, अहं कि मैं भी कुछ हूं, रजनीश के कहने पर कैसे चलूं? ठीक बात है किसी के बताये मार्ग पर चलना उचित नहीं, अगर हमें मार्ग का पता हो। पर यदि हमें पता नहीं कि कौन-सा रास्ता वहां जाता है और कोई हमें मार्ग बतलाता

है कि इस तरह चले जाओ। मैं गया हूं। तुम भी चले जाओ तो हमारा अहंकार बीच में खड़ा हो जाता है। तो फिर ठीक है बचाकर रखो इसे। यह इतने वर्ष बहुत काम आया। और भी काम आयेगा। हम दीवाने ही भले। हम पागल ही भले। हां, हमें मंजूर है कि हमारा कुछ भी नहीं। सब रजनीश का ही है। और जो कुछ भी शेष है, वह भी रजनीश का हो जाये।

और सच कहूं, तो काश ! जो तुम कहते हो वह सच ही होता। वास्तव में हम उसके दीवाने ही हो गये होते, पागल हो गए होते और अपने को बिलकुल भूल ही जाते, खो ही देते। पर हम तो ऐसे हैं कि पागल भी कहां हो पाते हैं उसके पीछे, वरना उसको पा न लेते। हां, कभी मीरा पागल हुई थी और मिट गई थी, पर कृष्ण को पा गई। चैतन्य, कहते हैं कि पागल हुए थे और पा गये थे प्रभु को। जीसस कहते थे—जो अपने को बचायेगा मिट जायेगा, और जो अपने को मिटा देगा बचा लिया जायेगा। अब हमें तो यह सब पता नहीं। क्योंकि हम तो इतने भी किस्मत वाले नहीं कि बिलकुल पागल हो जाते उसके पीछे, तो कुछ कह भी सकते थे। हां, कोशिश कर रहे हैं, कभी सच में पागल हो गये और खो गये उस अनाम में, जिसे रजनीश कहते हैं, तो सच कहते हैं वो बड़ा दिन होगा, वो बड़ा अहोभाग्य होगा। काश !...कि जो तुम कहते हो, सच हो जाता और हम उसके दीवाने हो जाते !! ★

वन्दन !

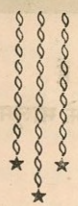

मैं मान रहा शक्ति पुरुष सब को जग में
किन्तु प्राप्त है दिव्य दृष्टि कुछ को मन में
मुस्काते दीप बहुत सितारों से रज में—
दिशा निदर्शन कर पाते कितने तम में ?

मुक्त जीवन में क्यों कोई चाहे बन्धन
उन्मुक्त वही जो तोड़ सके जग के क्रन्दन
सेवा भावी, सत्पथ धारक, निर्लिप्त मनीषी,
वन्द्य वाद्य हे ! भाव धरा के शत-शत वंदन !!

● *लालचन्द 'पुनीत'*

संपादक : **प्रतीक प्रकाशन**, जोधपुर (राज.) ★

सुप्रभात

आवरण हटा—
रश्मि बोली
सखी ! चल
भर अमृत से
तू भी झोली !
जब-जब मानव
पथ-भ्रष्ट हुआ
जब-जब धरती
पर पाप बढ़ा
धरती की
मुक्ति हेतु
तब-तब प्रभु ने
जन्म लिया !
'रजनीश' रूप में
आज सखी !
भगवान ने
जनम लिया !!

● *के० के० शर्मा,*
डब्लू जेड-३६, मीनाक्षी गार्डन,
नई दिल्ली - १८

उस अज्ञात को

गहन अंधकार में—विद्युत की तरह
एक झलक देकर—
अदृश्य हो जाने वाले
ओ महा चमत्कार !
मैं तेरी तलाश में नित निकलता हूं
और नित लौट आता हूं—
थका - हारा - हताश
आते - जाते लोग मुझे पूछते हैं—
किसकी खोज में हैं ?
और मेरे आंसू भर आते हैं
क्योंकि, न तेरा नाम मुझे मालूम है
न ही कोई पता !
ओ ! महा आश्चर्य
तू जहां भी हो
तुझको मेरे प्रणाम !!

● *स्वामी अगेह भारती,*
जबलपुर

अद्भुत पुत्र के अद्भुत पिता

भगवान सारे संबंधों से पृथक हैं। वे मात्र विश्व-सत्ता के समग्र अस्तित्व के प्रतीक हो गए हैं। पर, हम बाह्य जगत से संबंधित प्राणी केवल बाह्य जगत के संबंधों और घटनाओं पर ही अपना दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं और सारे द्वन्द्वों के कारण बनते हैं। यहां हम बाह्य दृष्टि से भगवान के पिता श्री को संबोधित करते हुए, उनके कुछ ऐसे गहनतम जीवन के दृष्टिकोणों को दे रहा हूं, जिनसे अंतरतम अनुभूतियों में हम खो जाते हैं।

भगवान की मां श्री ने पिछले वर्ष संन्यास लिया। इस पर भगवान के पिता श्री ने यह पत्र अपनी पत्नी को लिखा :

"मैंने जब सुना कि तूने संन्यास लिया है तब मुझे बड़ी खुशी हुई; पर आज ध्यान करने के बाद मैंने स्वप्न देखा कि तू संन्यास बेच रही है और बदले में बहुत-से कपड़े तथा माणिक ले रही है। चकित रह गया मैं, और मेरी आंख खुल गई। बहुत दुख हुआ, रात तीन बजे तक रोता रहा और फिर उसी समय उठकर स्नान करने के बाद व्यायाम किया और ध्यान के लिए बैठा। पर ध्यान में भी यही विचार आते रहे कि संन्यासी तो देता है; पर तूने तो कुछ वस्त्र और कुछ पत्थर लेके जीवन भर का त्याग और संन्यास बेच दिया, अब मेरी प्रार्थना है कि जिन सज्जनों ने तुझे भिखारिन बनाया है उन सबके घर जाकर उनके चरणस्पर्श के साथ क्षमा मांगकर उनकी वस्तु उनको फिर लौटा देना। अगर ऐसा नहीं किया तो पत्थर गिनते रहना पड़ेगा। बहुत विचार कर सभी का सब सामान लौटा देना।"

— बाबूलाल

अभी तक गैरिक वस्त्र धारण न करने वाले पति ने संन्यास-जीवन में कदम बढ़ाती हुई अपनी जीवन-संगिनी को लिखे इस पत्र को 'पुरुस्कार' कहेंगे या फिर पति ने पत्नी को दी हुई जीवन-मार्ग की चेतावनी या संन्यासी मात्र को दी हुई संन्यास की झलक कहेंगे।

कुछ भी हो, पत्र लेखक कोई साधारण आत्मा नहीं है, इसकी खबर यह पत्र देता है, ऐसी उच्च आत्मा जीवन को कैसे दृष्टिकोण से देखती है उसकी कुछ झलक हम देखेंगे। भगवान श्री की माता जी 'मा अमृत सरस्वती' के मुखारविन्द से कही हुई कुछ बातों से यह झलक दिखाई देगी—

बहुत इन्कार करने के बाद कुछ वस्त्र और कुछ माणिक संन्यास लेने के बाद माता जी को भेंट देने को आये थे, सरलता की मूर्ति माता जी ने हाथ जोड़ सबको इन्कार किया, पर कुछ भक्त मानने को राजी न थे और उन्होंने उपयुक्त भेंट दे दी। इनके मनको दुख न हो इसकी खातिर माता जी को बाह्य रूप से स्वीकार करना पड़ा, पर इसी बीच पतिदेव का पत्र आया कि तूने संन्यास बेचकर बदले में कुछ लिया है, तो मेरी प्रार्थना है कि देने वालों को वह सामान लौटा देना।

ऐसे सरल दाम्पत्य जीवन में कपड़ों का व्यापार होने के बाद भी जरूरत से ज्यादा वस्त्र न तो इन दोनों में से एक ने रक्खे हैं, और न पहने। माता जी ने तो ग्राम्य जीवन में जरूरत बिना चप्पल भी पहनी नहीं है। यह सब जाहिर करने के लिए नहीं लिख रहा हूं, पर जीवन में जब सरलता सादगी और प्रेम के फूल खिलते हैं तो यह सब कितना सहज घटित होता है, यह बतलाने के लिए यह प्रयत्न है।

एक समय की बात है :

पति-पत्नी दर्शन कर घर लौट रहे थे। रास्ते में माता जी के पैरों में कुछ लगा, देखा तो कान की ऐरिंग सोने की, तुरन्त उन्होंने पतिदेव को बतलाई। तो उन्होंने हाथ में लेकर मंदिर की ओर चलने को कहा। वहां जाकर पुजारी के हाथ में देकर कहा— कल दर्शन करने वाले प्रत्येक को पूछें और जो दूसरी ऐरिंग बताये उसे यह लौटा देना। इस तरह भगवान श्री के पिता जी परमात्मा का हिसाब उसी पर छोड़ देते हैं।

एक वक्त वे काम के लिए बाहर गांव गये थे। भगवान श्री और दूसरे भाई-बहिन बहुत छोटे थे। पिता जी ने नया मकान बंधाया था, और उनकी अनुमति मिलते ही नए घर में रहने के लिये जाना था। पर काम रहते उन्होंने

कहा—बाहर गांव से लौटने के बाद वहां रहने जायेंगे और इसी बीच घटना ऐसी हुई कि मकान का काम योग्य ढंग का न हो पाने से तूफान में दूसरे दिन मकान ढह गया। माता जी तो रोने बैठ गईं कि अब क्या होगा। घबराहट में रसोई भी न बना सकीं और बाल-भगवान सहित सब भाई-बहिन भूखे ही स्कूल चले गए। पिता जी को खबर मिलते ही वे दूसरे दिन आ पहुंचे, बालकों को भूखे देखकर तुरन्त माता जी से मिलने गये और आश्वासन देते हुए कहने लगे कि अभी मंदिर जाकर प्रसाद बांटता हूं, अगर हम वहां रहने गये होते तो आज सब बच्चे भी इसके भोग बनते, अतः ईश्वर को धन्यवाद दे।

ईश्वर पर सब छोड़ देने वाले पिता जी को गांव तथा गांव के आस-पास के लोग नाम से नहीं पर "बड़े भैया" के नाम से ही पुकारते हैं और उनको मनुष्य कहने में सकुचाते हैं, क्योंकि वे उन्हें देव ही मानते हैं। व्यापार में किसी ग्राहक के चाहे जितने पैसे बाकी हों पर उसे नया माल अचूक देते हैं और कहते हैं कि बेचारे की स्थिति अच्छी होगी तब वह दे देगा, उसे नया माल दे दो।

जन्म से जैन होने से बहुत साल तक पूजा-प्रार्थना की, पर यह सब उनको व्यर्थ लगने लगा और छूट गया। अभी तो उनके शांत और सरल जीवन में सुबह, शाम तथा रात को ध्यान में चले जाते हैं। अपनी पत्नी या पुत्र पर वे कभी क्रुद्ध नहीं हुए, और न उन्होंने किसी के काम में हस्तक्षेप किया।

कोई अगर उन पर क्रुद्ध हो या गालियां दे तो भी वे स्थिर और शांत रहते जैसे किसी दूसरे को यह कहा जा रहा है। और जिसके जीवन में ऐसी शांति और स्थितप्रज्ञता हो उनके बच्चों में भी वे संस्कार अवतरित होते हैं।

भगवान की माता जी कितनी शांत, सरल, उदात्त हैं यह तो उनको देखें तो ही खयाल में आता है। इसका उदाहरण देखें—अभी माता जी कुछ समय अपने पौत्र के इलाज के लिए बम्बई पहुंची हैं, 'भगवान' शब्द की हलचल और भगवान श्री के आस-पास इकट्ठे हुए कुछ व्यक्ति अशान्त हो छोटे बच्चों जैसा व्यवहार कर बैठते हैं यह देख माता जी ने कहा—रजनीश चलो न भगवान में क्या है, हम अपने शांत जीवन में सुखी हैं, लोगों के लिए संघर्ष क्यों झेलना। और भगवान ने उतनी ही सहजता से जवाब दे दिया।

और एक समय माता जी ने कहा— मैंने तो कुछ सीखा नहीं। मैंने संन्यास तो लिया है, पर तुम्हारी कोई किताब मैं नहीं पढ़ सकती, मुझे कुछ ज्ञान तो दो...। भगवान मुस्कुराते हैं, क्या जवाब दें...।

निर्वाण को उपलब्ध आत्मा को जन्म देने वाली मां कोई साधारण होगी ! इस मां को क्या खबर कि इसकी कीमत देवकी या यशोदा से कम नहीं और फिर सरलता का बोध सरल व्यक्ति को कैसे होगा। पर भगवान श्री इस बात से कैसे अनजाने होंगे।

संन्यास लेने के तुरन्त बाद ही उनको ऐसा अनुभव होने लगा कि रोज स्नान करने के बाद ध्यान करने का मन होता है। खड़े-खड़े ही हाथ जुड़ जाते हैं, आंखें बंद हो जाती हैं और अन्दर से नमोकार मंत्र नौ बार गूंज उठता है। और ॐ की ध्वनि अन्दर बहुत गहराई से सदा गूंजती रहती है। जो जानते हैं वे ही कह सकते हैं कि यह साधना की किस सीढ़ी या शिखर का अनुभव है, बाकी फूल को कहां से खबर हो कि उसकी सुगन्ध से आकर्षित कोई राही आनन्द अनुभव करता है, फूल तो बस सुगन्ध बिखराता है।

मूल गुजराती : *स्वामी कृष्ण कबीर*

अनुवाद : *मा योग यशा*

प्रियदर्शी प्रभु

हे मेरे प्रियदर्शी प्रभु !
तुम तो हो असीम !
मैं शब्दों की सीमा में तुम्हें कैसे बांधूं ?
तुम तो हो आकाश !
मैं अपनी छोटी-सी खिड़की से कैसे झांकूं ?
तुम तो हो महासागर !
मैं आंखों की छोटी-सी प्याली से तुम्हें कैसे मापूं ?
तुम तो हो महासंगीत !
मैं अपने छोटे-से गीत में तुम्हें कैसे गाऊं ?
तुम तो हो विराट् !
मैं जिगर के छोटे-से टुकड़े से तुम्हें कैसे जानूं ?
बस यूं ही —
तुम्हारे अस्तित्व का जाम पिये जा रही हूं —
और अपने को मिटाने की चाह में जिये जा रही हूं !

● *जयवंती महेश्वरी*,
बम्बई

जीवन अभी
और
यहीं है !

सन् १९६४ की बात है। मेरे तीनों भाई माथेरान गये थे। वहां कोई व्याख्याता आये थे, अर्थात् वे 'भगवान श्री' ही थे ! तो मेरे भाइयों ने चाहा था कि मैं भी उनके साथ जाऊं, लेकिन तीन दिन कामकाज छोड़कर जाना मुझे ठीक नहीं लगा और इसलिए मैं उनके साथ गया नहीं। लेकिन आखिरी दिन इतवार को मैं वहां पहुंच गया। सोचा कि देख तो आऊं कौन हैं ? — क्या कहते हैं ?

दोपहर एक बजे हम लोग याने मैं और मेरी पत्नी रतन वहां पहुंचे। हमें देखकर सभी मित्र हंसने लगे !

किसी ने कहा, 'घूमने आये होंगे, और क्या !'

किसी ने पूछा, 'पहले दिन से ही क्यूं नहीं आये ?'

किसी ने खेद प्रकट किया कि 'पहले दिन से आते तो अच्छा था, अब क्या ! एक ही व्याख्यान सुन पाओगे।'

रात को प्रवचन हुआ। भगवान श्री ने अपने प्रवचन में एक कहानी सुनाई, जो मेरे भीतर कहीं गहरे में चोट कर गई—मुझे इस प्रकार छू गई कि आज तक मैं उसे भूल नहीं पाया हूं। वह कहानी उन्हीं के शब्दों में कुछ इस प्रकार थी—

"मैं कुछ मित्रों के साथ पास ही के एक गांव में गाड़ी से जा रहा था। रास्ते में हमें रुकना पड़ा, क्योंकि वर्षा की वजह से सामने के नाले में बाढ़ आ गई थी। इतने में और एक गाड़ी आई और रुक गई। उस गाड़ी में जो मित्र

थे कुछ परिचित से थे, तो वे भी बाहर निकल आये और बातचीत शुरू हुई। करीब-करीब एक घंटा हम लोग बोलते रहे। फिर नाले का पानी कुछ कम हो गया और उनकी गाड़ी चल दी। बीच में हमारी गाड़ी पंक्चर हो गई और वे लोग आगे निकल गये। जाने से पूर्व मैंने उन्हें कहा था कि 'मैं जो कह रहा हूं, इसे मान मत लेना, लेकिन इस पर सोचना जरूर!' तो उन्होंने कहा था, 'देखेंगे! सोचेंगे! अभी तो पूरी जिन्दगी पड़ी है! और फिर इतनी जल्दी भी क्या है!'

उनके चले जाने के बाद हमारी गाड़ी ठीक हुई और हम लोग भी आगे बढ़े। हम एक-दो मील ही आगे गये होंगे कि देखते क्या हैं कि वह कार जो कुछ देर पहले हमारे साथ थी, एक झाड़ से बुरी तरह टकरा गई है और एक बच्ची को छोड़कर सभी की मृत्यु हो गई। हम सिर्फ देखकर स्तब्ध रह गए—हां, इसके सिवा कर ही क्या सकते थे हम! और मुझे उनकी बातें याद आ रही थीं कि 'इतनी जल्दी भी क्या है'...!"

हमारा जीवन भी ऐसा ही है। हम धर्म को कल के लिए छोड़ देते हैं, जबकि जीवन अभी और यहीं है। उसके पास कोई 'कल' नहीं है।

दूसरे दिन सुबह मेरे बड़े भाई साहब ने भगवान श्री से मेरा परिचय करवाया और मैंने उनको प्रणाम किया।

इस मुलाकात के बाद भगवान श्री से कई बार मिलना हुआ, लेकिन आज भी वह पहली मुलाकात, वह कहानी सब कुछ मेरी आंखों के सामने ज्यों की त्यों है। और अब 'मैं' भी बचा ही कहां हूं! अब तो बस 'वे' ही हैं—वे ही सब करवाते हैं—उन्हीं से सब हो रहा है।

सोचा भी नहीं था कि वह एक घटना जिंदगी को इस तरह बदल देगी—कहां से कहां पहुंचा देगी!

प्रभु, तेरी करुणा अपार है! प्रभु, तेरी लीला, तेरा प्रेम अगाध है! और क्या कह सकता हूं! मुझ में सामर्थ्य ही कितनी है!! तेरे चरणों में शत-शत वंदन...!!!

● *साधु अमृत बोधिधर्म,*
जीवन जागृति केन्द्र, पूना

रजनीश या नी अमृत

पी-एच० डी० करने के बाद मैं बेकार था, मेरी स्कालरशिप का पीरियड भी लगभग समाप्त हो गया था, नौकरी न मिलने से मैं अपने आपको बहुत अपमानित और अपराधी महसूस करने लगा था। एक कुंठा थी, जो मेरे तन-मन में पल रही थी। देश, समाज, गुरु और मां-बाप सभी से मेरी श्रद्धा उखड़ चुकी थी। इन सभी के व्यवहारों ने मेरे दिल को गहरी ठेस पहुंचाई थी। मुझे लगता है अभी तक हमने जो सम्बन्ध निर्मित किये हैं उन सबका आधार पैसा है, इसका गहरा अनुभव मुझे उन्हीं दिनों हुआ, इसीलिए मैंने विदेश जाने का फैसला

किया। सच तो यह था कि मैं यहां के लोगों से बुरी तरह ऊब गया था, मुझे कोई ऐसा आदमी ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता था जिसका हृदय प्रेम और आनन्द से भरा हो। पी-एच० डी० के दौरान मैंने उन सभी बुद्धिजीवियों को देखा है जो चरित्र और ज्ञान की बातें करते नहीं अघाते हैं, परन्तु उनसे अधिक दुश्चरित्र, सड़े-बासे, घमंडी, डरपोंक लोग ढूंढ़ना मुश्किल है। इस घिनौने वातावरण से मैं बेहद ऊब गया, कुंठा पीड़ा संत्रास को उन दिनों मैंने बहुत जिया था।

बात उन्हीं दिनों की है, मेरा अमरीका की डेल कारनेगी यूनिवर्सिटी में एडमीशन हो गया था। मैं चाहता था, कोई मेरी जमानत लेकर मुझे अमेरिका भेज दे। अमरीका मैं क्यों जाना चाहता था, आज जब सोचता हूं तो आज अपने पर बहुत हँसी आती है, मुझे अमरिकी समाज की मान्यतायें और वहां की गतिमान जिन्दगी बहुत पसंद थी। जब कभी मैं किसी अमरिकन चेहरे को देखता तो मन ही मन मैं विचार चलता कि देखो कितनी गौरव, गरिमा और प्रतिभा संपन्न हैं ये लोग। शायद सिर्फ इसीलिए मैंने तो जीवन का लक्ष्य बना लिया था कि किसी अमरिकन लड़की से शादी करके वहां प्रोफेसर हो जाऊंगा, फिर घर वालों को एक लम्बी सी रकम भेजकर चिंता मुक्त हो जाऊंगा और अपने भाई को भी अमरीका में रखूंगा ताकि उसका जीवन हिन्दुस्थान में न सड़ जाय। उन दिनों मैं इसी नशे में था, लेकिन होना कुछ और था जिसका मुझे पता नहीं था।

इसी जमानत के सिलसिले में मैं भगवान श्री रजनीश से मिला था। भगवान श्री दूर के रिश्ते से मेरे सम्बन्धी लगते हैं, लेकिन आज जैसा हम उन्हें जानते हैं उसमें वे सारे सम्बन्धों के पार मात्र दिव्य ऊर्जा शक्ति के पुंज हैं। मेरी भगवान श्री से उन दिनों विशेष पहचान नहीं थी, अतः मैं श्री लक्खू बब्बा को लेकर उनके घर पहुंचा। मैंने उनके सामने अपनी समस्या रखी, वे बोले मेरी पहचान का एक लड़का अमरीका में है, मैं चिट्ठी लिख दूंगा, तुम्हें कोई तकलीफ न होगी।

मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि कोई इतनी सरलता से कह सकता है। लक्खू बब्बा ने भगवान श्री से कहा कि इनकी मर्जी तो अमरीका जाने की है, शादी भी नहीं कर रहे हैं, पिता जी

बेचारे पुराने खयालों के हैं, परेशान हैं। भगवान श्री ने मुझ से कहा कि शादी-वादी के चक्कर में न पड़ना ही ठीक है, जो तुम सोचते हो। फिर उन्होंने कहा निर्मल तुम ने गणित में पी-एच० डी० की है, एक आदमी ने मुझ पर पी.एच० डी० की है और उन्होंने आचार्य रजनीश नामक पुस्तक, डा० रामचन्द्र प्रसाद द्वारा लिखित, की एक प्रति अपने हस्ताक्षर सहित मुझे भेंट की।

आज जब सोचता हूं तो लगता है कि आदमी की जिन्दगी भी कितनी अजीब है। जीवन की यात्रा में न जाने कितने ऐसे अनजाने मोड़ हैं, जिसका उसे कुछ पता नहीं। उस दिन का भगवान श्री से मेरा मिलना और उनके द्वारा जो किताब मिली, उसे पढ़कर मैं भगवान श्री और उनकी साधना के सम्बन्ध में और अधिक जानने को उत्सुक हुआ। बाद में तो मैंने भगवान श्री का साहित्य पढ़ा, उसमें डूबा—खोया और ऐसा खोया कि अब लगता है कि जन्मों-जन्मों तक उनमें ही, उनकी अमृत गंगा में ही, मैं खोया रहूं। यह कहना भी अब व्यर्थ लगने लगा है कि रजनीश यानी अमृत, क्योंकि कहना भी एक बहुत औपचारिक तल की घटना है। अमृत और रजनीश तो दोनों ही भीतर समा गए हैं।

मुझे वह दिन भी याद आता है जब श्री प्रेम विजय जी मुझे अमृतधाम, देवताल (जबलपुर) श्री आनन्द विजय के पास ध्यान कराने ले गए और मैंने पहली बार ध्यान किया। मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि आनन्द विजय जी के घर भगवान श्री के अनेक फोटो लगे हैं, उन सब में भगवान की अद्‌भुत छवि विराजमान हैं, मेरा कौतूहल जागा, भगवान श्री को देखने की इच्छा प्रबल हो उठी। मैं देखना चाहता था कि ऐसा इनमें क्या कुछ हो गया है जो लोग इन्हें भगवान कहते हैं। तो सन् ७१, मार्च का आबू कैम्प मैंने अटेन्ड किया। भगवान श्री से मैं मिलना चाहता था, परन्तु उनके सेक्रेटरी और साधु-संन्यासी उनसे मिलने में बाधा बन रहे थे, उनका कहना था कि अभी दीक्षा दी जा रही है, इसके बाद यदि समय मिला तो ही आप मिल सकते हैं, अब पाठक गण आप मेरी परेशानी समझ सकते हैं। आखिर मुझे भी स्वामी बनकर उनके दर्शन करने पड़े। उस छवि को देखकर मैं तो आत्म-विभोर हो गया, क्या

हुआ यह सब अपने शब्दों में कहने में असमर्थ हूं, अतः कबीर के शब्दों में कहने की कोशिश करूंगा ।

कबिरा देखा एक अंग, महिमा कही न जाय ।
तेज पुंज परसा धनी, नैना रहा समाय ।।
पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान ।
कहबे की सोभा नहीं, देखे ही परमान ।।
अगम अगोचर गम नहीं, वहां वह झिल मिल ज्योति ।
वहां कबीरा बन्दगी, पाप पुन्य नहिं छोति ।।

और अब मेरी जो हालत है वो यह है कि—

आया था संसार में, देखन को बहु रूप ।।
कहै कबीरा सन्त हो, परि गया नजरि अनूप ।।
कबिरा मन मधुकर भया, किया निरंतर बास ।
कमल जु फूला नीर बिन, निरखेंगे निज दास ।।
गगन गरजै बरसै अमी, बादल गहर गँभीर ।
चहु दिशि दमकै दामिनि, भीजै दास कबीर ।।

● *स्वामी निर्मल आनन्द भारती*, जबलपुर

भगवान या ईश्वर कहने में भूल कहां ?

*आ*चार्य श्री रजनीश को अवतार या भगवान कहने में, समझने में कोई भूल नहीं है। वे जब भी जहां भी बोलते हैं वहां एक अमृत रूपी तरंगे प्रवाहित होती हैं। उनके प्रवचन पढ़ने से, सुनने से भी वैसा सब कुछ हो जाता है जैसे वे स्वयं सामने उपस्थित हों और बोल रहे हों। उनके पुस्तकाकार प्रवचन वैसे ही चार्ज्ड (तरंगायत) होते हैं, जैसे पुराने ज़माने में मन्दिर होते थे जो व्यक्ति को चार्ज करते थे। आपकी स्तुति शब्द से नहीं निःशब्द से हो सकती है।

ऐसी मुक्त आत्मा को.....भगवान को मेरे शत-शत प्रणाम। जन्म-जन्म में आपका साथ हो ऐसी कामना के साथ।

— *मोती आनन्द राम*, अदिपुर

[एक प्रेमी का दिनांक ११-९-७२ का पत्र]

आंखों देखा कानों सुना

• *स्वामी अमृत कैवल्य,*
सुरेन्द्रनगर

सन् १९६२ दस वर्ष पूर्व की बात है। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (मार्च या एप्रिल मास था) महावीर जयन्ती का दिन बम्बई के आजाद मैदान में बड़े समारोह से मनाया जा रहा था। जैनियों के, सभी संप्रदाय के व्यक्ति, नेता, साधु-साध्वियां निमंत्रित और उपस्थित थे। उस महोत्सव में भगवान रजनीश भी विशिष्ट रूप से आमंत्रित थे और जबलपुर से पधारे थे। वह दिन मेरे लिए सौभाग्य का और महत्व का बन गया। क्या हुआ? कार्यक्रम के अनुसार वक्ताओं ने अपने वक्तव्य भगवान महावीर के जीवन पर दिये, पर सब वही पिटापिटाया, पिसापिसाया सुनी-सुनाई पौराणिक कथा के अनुसार। सिर्फ उनकी पहुंच बाहरी खोल-देह तक थी, वह भी बहुत ऊपरी— कहीं पढ़ी, कहीं सुनी हुई, बचपन के खेल के किस्से, किसी राक्षस और सर्प से जीतने की कथाएं, कहीं कोई आगे बढ़ा तो उनके बाह्य तप, संसार-त्याग, वर्षीदान (बरस भर अबजों का दान) आदि का वर्णन किया। पर वह तो सभी ने कई बार सुनाया था।

एक मुनि बड़े प्रतिभाशाली थे, प्रखर वक्ता थे। लोग उनको सुनते मंत्र-मुग्ध हो जाते, वाहवाह होती। वाक्पटुता और आधुनिक भाषा में लोगों की रुचि के अनुसार प्रवचन देते, इसलिए हजारों की तादाद में लोग सुनने आते और शांति से सुनते। उनका भी प्रवचन था और उनके बाद रजनीश जी का प्रवचन रखा था। भगवान महावीर के जीवन पर उन्होंने जोरदार

भाषण दिया। पूरा होते तालियां बजीं। अब रजनीश जी मंच पर आये। वक्तव्य शुरू किया, पर यह क्या ? लोग उठ-उठकर चलने लगे। लोगों की यह धारणा थी कि इन मुनिवर जैसा किसी का भाषण हो ही नहीं सकता, इनको सुना तो सब आ गया। अब कोई बोले तो क्या रस आने वाला है ? पर आश्चर्य, लोग दरवाजे तक पहुंचे ही थे कि भगवान रजनीश जी की यह बुलंद और ओजस्वी वाणी सुनाई पड़ी—

क्या महावीर सारी जिंदगी पशु, पक्षी, सर्प, राक्षस आदि के साथ लड़ने-झगड़ने का ही काम करते रहे और इसी से वे महावीर कहलाये ? या उन्होंने कुछ और किया जिसके कारण उन्हें महावीरत्व उपलब्ध हुआ ?

यह सुनते ही लोग जहां खड़े थे वहां ठिठक गये, जो बाहर गये थे वे वापस आ गये, अपनी-अपनी जगह पर फिर से बैठ गये।

प्रवचन शनैः शनैः गंगा की धारा के समान अविरल बहने लगा— न कहीं धारा टूटी, न कहीं स्खलन, नपे तुले शब्द। महावीर के भीतरी जगत के रहस्य जैसे-जैसे उद्घाटित होते गए, वह भावदशा, वे मुद्राएं, वह मधुर और हृदय को प्रफुल्लित करने वाली वाणी के रूप में वह रस बरसा कि क्या कहूं! आज भी हृदय पर अंकित है। लोगों ने फिर तो बड़े ध्यान से प्रवचन सुना और हर्ष से जोर-जोर से तालियां बजाईं। भगवान श्री का यह प्रथम दर्शन मुझ सोये को जगाने में प्रबल निमित्त बना। फिर तो माथेरान शिविर में सीमित साधन होते हुए भी पहुंचा। वहां जो भाषण हुए उससे तो खूब प्रभावित हुआ। साक्षात् कोई दिव्य प्रकाश ही जैसे इस पृथ्वी पर खेलने आया हो। प्रकृति और परमात्मा दोनों का सुभग मिलन देख अत्यन्त आनन्द-विभोर हो उठा। एक करुणा का प्रवचन ऐसा हृदय को बींध गया कि प्रवचन पूरा होते ही उनके चरणों में गिरकर हृदय के भार को हलका किया। फिर तो प्रेम एवं श्रद्धा बढ़ती गई और मन में संकल्प किया—कभी ये भगवान मेरे यहां पधारेंगे। हृदय से किया गया संकल्प अवश्य पूरा होता है।

माथेरान से सुरेन्द्रनगर आकर आचार्य श्री को पत्र लिखा कि क्या आप इस सौराष्ट्र भूमि को अपने पुनीत चरणों से पावन करेंगे ? तुरंत ही जवाब मिला—जो मित्र बुलायेंगे जरूर आ सकते हैं। ऐसा अकल्पित जवाब कि रोयां-रोयां नाच उठा !

फिर तो बड़े-बड़े महारथियों के साथ भगवान श्री का सौराष्ट्र में दौरा हुआ और भावनगर, लिबंडी, सुरेन्द्रनगर, वढवाण, राजकोट, जामनगर आदि

में प्रवचन हुए। यात्रा बड़ी सफल रही। मेरे प्रांगण में स्वयं पधारकर उन्होंने जो प्रेम दिया और सुरेन्द्रनगर से विदा लेते समय अपने हाथ में मेरा हाथ लेकर जो भाव प्रगट किये और उस समय मेरे हृदय में जो प्रसन्नता छा गई—उस सभी का कैसे वर्णन करूं ? वह एक अलौकिक, अनुपम क्षण मेरे लिए आनन्द का सागर हो गया। सुरेन्द्रनगर में 'रजनीश-प्रेमी-मित्रमंडल' बना। तीन बार भगवान श्री सुरेन्द्रनगर पधारे। उनके ज्ञानसत्र के प्रवचनों से जनता में एक जागृति की लहर दौड़ गई। बाद में उन्हें बुलाने का बहुत बार प्रयत्न किया, पर अब विराट् कार्य में संलग्न होने के कारण उनका आना संभव नहीं हो पा रहा।

भगवान श्री के सान्निध्य में और उनके रहस्योद्घाटक प्रवचनों को सुनने में इतना रस आने लगा है कि जहां तक हो सके वहां तक एक भी मौका—प्रवचन हो या साधना शिविर—खाली न जाय और सामर्थ्य अनुसार लाभ उठाया जाय, ऐसी इच्छा बलवती हुई जिसके फलस्वरूप बहुत बार नौकरियां छूटीं, छोड़ना पड़ीं। अच्छा ही हुआ। उस आनंद के सामने गुलामी में क्या रस हो सकता है ? नौकरी छूटती तो छूटने का दुःख न था। जीवनोपाय के रूप में नौकरियां, धंधा चुनना पड़ता तो कहीं न कहीं अनुकूल संजोग जुड़ ही जाता था। भगवान श्री की माला का चमत्कार होते हुए भी कहने से डरता हूं; क्योंकि कभी ऐसा अनुकूल संजोग न हुआ तो मन कहीं दोषारोपण न कर दे। प्रभु की कृपा अपरंपार है। मनुष्य अकेला कुछ नहीं कर सकता। परमात्मा की सहायता चाहिये।

संन्यास लिया, वैराग्य से आया नहीं, पर प्रयोग के रूप में देखना चाहा कि क्या होता है। मेरा अभिधान हुआ— "स्वामी अमृत कैवल्य"। बड़ा ही सुन्दर, मजेदार, मनपसंद नाम। गेरुए वस्त्र, ध्यान का नियम, भगवान श्री की प्रतिकृति वाली माला स्वहस्त से मिली। धन्य हुआ, स्वनाम सौभाग्य और अमृत सार्थक हुआ। अभी अपना स्वामी बन नहीं पाया, पर अपना स्वामी बनने की साधना चल रही है।

भगवान श्री बम्बई से जबलपुर जाते, तब नौकरी से जल्दी छूटकर मैं और दीपचन्द भाई दादर दर्शन के लिए जाते। वहां भीड़ न होने से दर्शन और मिलन का खूब आनन्द आता। ट्रेन ज्यादा देर रुके मन में यही अब रहता। भगवान श्री का साहित्य और प्रवचन सुनने-पढ़ने में इतना आनन्द आता है कि अब और कोई ग्रन्थ पढ़ने की रुचि नहीं होती। उनके 'बोध वचन' इतने प्रिय

लग रहे हैं कि उनको आत्मगत करने की सतत भावना है और उन्हें आगे यहां देने का मोह संवरण नहीं कर पा रहा हूं।

(१) **होशपूर्वक जिओ और सभी काम जागृतिपूर्वक करो।**

(२) **जीवन है अभी और यहीं। इसे जो जान लेता है वह परमात्मा को पा लेता है।**

(३) **प्रेम ही प्रभु है। अपने भीतर जो गहरे प्राण तक जाता है, उसे ही प्रेम का अनुभव होता है।**

अंत में, भगवान श्री ने जो दिया है उससे किसी प्रकार से उऋण नहीं हुआ जा सकता। कितना ही धन्यवाद दूं बहुत ओछा ही रहेगा। अतः उनके चरणों में मेरे अगणित नमन !

★

आनन्द - स्रोत

भगवान पूज्य श्री आचार्य रजनीश जी का मेरा सम्बन्ध काफी पुराना है। वे जबलपुर कॉलेज में आचार्य (आध्यात्मिक प्रोफेसर) का कार्य करते थे तभी से वे भारत में आध्यात्मिक विषय पर व्याख्यान के दौरे पर निकलते थे। तब से मैं उनके व्याख्यान सुनकर बहुत ही आनन्दित होता था। उनके प्रवचन में सर्व धर्म के प्रति जो अटूट प्रेम के उपदेश पर बातें आती थीं, उससे मेरे दिल पर काफी असर होता था। महात्मा गांधी के बाद सभी धर्म के प्रेम भरे प्रवचन उनके मुख से सुनने को मिले। बाद में आप प्रवचन में ध्यान, योग, साधना की बातें समझातें, तथा ध्यान-साधना की निर्विचार पद्धति जब मैंने सुनी और प्रेक्टीकल खुद करने का प्रयत्न करने लगा तो जीवन में आनंद दिन पर दिन बढ़ता गया। मैंने उनके जबलपुर, पूना, मुंबई में व्याख्यान काफी सुने हैं। माथेरान, महाबलेश्वर, नारगोल आदि शिविरों में शामिल हुआ हूं। उनके प्रेम से मैं बहुत ही आनन्दित हुआ। उनके प्रवचन अहमदनगर में हुए। उससे सभी प्रेमी उपकृत हुए।

अभी हाल में मेरे कुटुंबीय और शहर के काफी लोग उनका कार्यक्रम यहां करते हैं, और शिविरों में भी भाग लेकर उनके प्रवचनों के मासिक, पाक्षिक पढ़ते रहते हैं। मैं भी रोजाना ध्यान-धारणा कर जीवन में जो आनंद लेता हूं वह भगवान आचार्य श्री रजनीश जी की ही कृपा है।

● *पूनमचन्द भंडारी*, अहमदनगर

दो भाव सुमन

ऐसे ये रजनीश !!

कहते हैं कि कुछ भी नहीं छोड़ना है
और सब कुछ छुड़वा लेते हैं !
कहते हैं कि मेरे विचारों को मत पकड़ लेना
और इनके विचार हैं कि पीछा ही नहीं छोड़ते !
कहते हैं कि मेरे पीछे आने की कोशिश मत करना
और खुद हैं कि हमें अपने पीछे घसीटे लिए जा रहे हैं !
कहते हैं कि मेरी बातों को मान मत लेना
और हमें मनवा के ही छोड़ते हैं !
कहते हैं कि मुझे गुरु मत बना लेना
और हमें शिष्य बना के ही छोड़ते हैं !!

रजनीश ! अब तू ही लिख !!

हे प्रेम !
हे करुणा !!
जी करता है कि तेरे बारे में कुछ लिखूं
लेकिन क्या लिखूं ?
और लिखूं भी तो कैसे लिखूं ?
पूछता है 'क्यूं ?'
कमाल है !!
तूने ही तो मिटा डाला है 'मुझे' !
और पूछता है 'क्यूं ?'
देख !
अब तू ही लिख !
तू ही लिख जो लिखना है !
तू ही लिखवा ले !
तू ही लिखवा ले, जो लिखवाना है !!

● *मा आनन्द वन्दना*, पूना

डु
बा
ही
दे
अ
प
ने
सा
ग
र
में

● बी० एल० नाग,
जबलपुर

★

परमात्मा सदा निकट है। सिर्फ शून्य में अंदर झांकने की आवश्यकता है। अंदर झांकना सिर्फ साधना में, ध्यान (meditation) में सम्भव हो पाता है। जब तक "मैं" हूं तब तक परमात्मा से मिलन नहीं हो पाता। जब नदी सागर में मिलती है, तब वह नदी, नदी नहीं होती, बल्कि वह सागर ही हो जाती है। जिस क्षण बूंद मिटती है, सागर ही हो जाती है। लहर मिटते ही सागर हो जाती है। "मैं" मिटते ही परमात्मा हो जाता है। परमात्मा चारों तरफ है। सिर्फ अंतर्दृष्टि चाहिए देखने और आनंद लूटने के लिए। परमात्मा चारों तरफ से, हर दिशा से आनंद बरसा रहा है, लेकिन हम ही लूट नहीं पा रहे हैं आनंद; बल्कि हम अपने को बचा रहे हैं। कारण स्पष्ट है। हमारा "मैं" नहीं छूट पाता, बंधन नहीं छूट पाते, संकुचित दायरे एवं घोंसले नहीं छूट पाते, स्वतंत्र नहीं हो पाते। जिस क्षण नाव की जंजीर किनारे से छूट जायेगी, निश्चित ही नाव चल पड़ेगी सागर की तरफ जहां सागर ही सागर है—परमात्मा ही परमात्मा है। सिर्फ **"प्रेम" ही एक सूत्र है जो सब बन्धनों से मुक्त करता है। जो "प्रेम" बांधता है, वह "प्रेम", "प्रेम" नहीं है। "प्रेम" हमेशा स्वतन्त्र है। भगवान कृष्ण ने जो प्रेम सिखाया व दिया वही "प्रेम" आज भगवान श्री दे** रहे हैं। ऐसा न हो कि हम आपके "प्रेम" से वंचित ही रह जायें। भगवान श्री हम आप सबके द्वार खटखटा रहे हैं और कह रहे हैं कि हे! मनुष्य अपने संकुचित दायरे से क्षण भर के लिए बाहर आ और देख क्या रहा है?—लगा दे छलांग सागर में जहां "तू" और "मैं" एक होते हैं। वहीं तो है गहराई जहां आनंद ही आनंद है। और फिर यहां-वहां भटकने की भी क्या आवश्यकता है? सब कुछ तो वहीं पर है, जहां तू खड़ा है। सिर्फ भीतर

झांकने की देर है। ध्यान में डूबने की देर। फिर कब तू परमात्मा से अलग रहा है, न है और न रहेगा ही। भूल सिर्फ दृष्टि में है। भूल इसी जन्म में ही नहीं चलती बल्कि यह भूल अनेकों जन्मों से चली आती है। और वही भूल दोहराई जाती है। हम हर जन्म में पश्चाताप करते हैं। भूल को यदि समय रहते समझ लिया जाये तो फिर भूल पुनः नहीं होगी। फिर हम परमात्मामय जीवन ही पाते हैं। फिर हम उस संसार में होते हैं जहां चारों तरफ परमात्मा का ही सिंहनाद सुनाई पड़ता है, फिर जीवन-संगीत ही बजता रहता है। रोम-रोम आनन्द से भर जाता है। फिर शिकायत के लिए कोई जगह ही नहीं रह पाती। फिर तो संन्यास ही एक माध्यम रह जाता है जीवन को जीने के लिए। फिर तो संसार में रहकर भी संन्यास है—गृहस्थ में भी संन्यास है। सब जगह संन्यास संभव है—जैसे कीचड़ में कमल। तब फिर सारे तनाव, सारी ईर्ष्या, सारे विकार, सारे युद्ध विदा हो जाते हैं।

४२ वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर आपके चरण कमलों में सहृदय प्रेम, समर्पण। आपके असीम प्रेम के लिए कोटि-कोटि नमन।

हे! प्रेम, तेरी वर्षा तो सतत है, पर ऐसा भाग्य हमारा कहां कि हम तेरे प्रेम में डूब सकें। उस क्षण की प्रतीक्षा है कि हम सब तेरे प्रेम को अनुभव कर—जीवन को धन्य कर पायें। शक्ति दे! शक्ति दे!! हे प्रेम!!!

★

प्रार्थना

[एक मुक्तक]

जहां-जहां जिसको देखूं उसमें प्रतिबिम्ब तुम्हारा हो
नाचूं, गाऊं, सोऊं, खाऊं प्रतिपल प्रभु साथ तुम्हारा हो
काम-क्रोध और लोभ-मोह का रहे न नामो-निशां तक
मैं मरूं तो शीश वहां तक हो—हों प्रभु के चरण जहां तक

● *स्वामी आनंद असंग*

अमृत-पत्र

(बम्बई की साध्वी योग शिरीष, संपादिका : दैनिक मराठा, को लिखे गये भगवान श्री के कुछ पत्र)

प्यारी शिरीष,

प्रेम । शुभ है अपूर्णता का बोध ।
मंगलदायी है अज्ञान का स्मरण ।
श्रेयस्कर है स्वयं की असहायावस्था की प्रतीति ।
क्योंकि, ऐसे बोध में से ही पूर्णता का द्वार खुलता है ।
और स्वयं को समग्ररूपेण असहाय (Helpless) समझना ही प्रभु को स्वयं पर कार्य करने का अवसर देना है ।
क्योंकि, **समर्पण ही** साधना है ।
'सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज ।'

रजनीश के प्रणाम
१३-१-१९७१

प्यारी शिरीष,

प्रेम । लगता है कि तेरे ध्यान के दिये में अब ज्योति पकड़ गई है ?
अब उसे सम्हालना ।
बुझे दिये के पास तो सम्हालने को कुछ भी नहीं होता है— लेकिन दिये के जलते ही आंधियां परीक्षा लेने को आ जाती हैं ।

रजनीश के प्रणाम
२१-१-१९७१

प्यारी शिरीष,

प्रेम । जानकर ही शरीर की बात नहीं लिखी थी ।
जो मैं नहीं हूं—उसकी बात लिखने की बात ही कहां है ?
और जब से यह जाना तब से मेरे अस्वस्थ होने का उपाय ही नहीं रहा है ।
शरीर में जरूर परिवर्तन होते रहते हैं ।
उसे तो न होने की तैयारी भी करनी पड़ती है न ?

रजनीश के प्रणाम
२२–१–१९७१

प्यारी शिरीष,

प्रेम । यौन केन्द्र (Sex Centre) प्रकृति से सम्बन्ध का द्वार है ।
और ठीक ऐसे ही सहस्त्रार परमात्मा से सम्बन्ध का ।
ऊर्जा (Energy) एक ही है ।
वही काम में बहती है, वही राम में ।
लेकिन यात्रायें भिन्न हैं ।
दिशायें भिन्न हैं ।
परिणाम भिन्न हैं ।
उपलब्धियां भिन्न हैं ।
ध्यान प्रारंभ होता है यौन-केन्द्र से ही ।
क्योंकि वहीं मनुष्य है ।
पर गहराई के साथ-साथ ऊर्ध्वगमन होता है ।
चेतना पानी की जगह अग्नि बन जाती है ।
नीचे की जगह ऊपर की ओर बहाव शुरू होता है ।
और अंततः सहस्त्रार पर समस्त ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है ।
यह छलांग के पूर्व अनिवार्य तैयारी है ।
और जिस क्षण भी अविभाज्य रूप से समस्त जीवन-शक्ति सहस्त्रार (Elan-Vital) पर संग्रहीत होती है उसी क्षण छलांग लग जाती है और दिये की ज्योति महासूर्य से एक हो जाती है ।

रजनीश के प्रणाम
५–३–१९७१

प्यारी शिरीष,

प्रेम। शून्य में प्रवेश के पूर्व अति-सूक्ष्म शब्द की अनुभूति होती है।
वह शब्द अर्थातीत पर अपूर्व शांतिदाई होता है।
ध्वनि तरंगें (Sound-Waves) अस्तित्व के संगठक विद्युत्-कण-तरंगों (Quanta) के लयबद्ध नृत्य से फलित होती हैं।
अस्तित्व का परमाणु-परमाणु अनंत नृत्य में लीन है।
बाहर-भीतर—समस्त आयामों (Dimensions) में अनादि-अनंत संगीतोत्सव चल रहा है।
हम उलझे होते हैं व्यर्थ के—दैनंदिन—शोरगुल में इसलिए उस संगीत का साक्षात्कार नहीं हो पाता है।
ध्यान में—जो सदा है उसकी पुनः प्रतीति प्रारम्भ होती है।
उस द्वार के ही तू निकट है इसीलिए अहर्निश नाद की वर्षा हो रही है।
उसमें ज्यादा से ज्यादा लीन हो—उसे ज्यादा से ज्यादा सुन और उसमें डूब।
यही मूल शब्द है।
यही बीज मंत्र है।
यही वेद है।
और इसके भी पार जो है वही ब्रह्म है।

रजनीश के प्रणाम
९-३-१९७१

मन की व्यथा

आज से ५ वर्ष पूर्व परमपूज्य आचार्य श्री रजनीश जी अमृतसर वेदान्त सम्मेलन में गये थे। उसके बाद जब वे वापस लौटने लगे तो उनकी सीट वातानुकूलित कमरे में बुक हुई थी। मेरी भी ऊपर वाली सीट उसी कमरे में बुक हुई। गाड़ी जालन्धर स्टेशन पर पहुंचने वाली ही थी तब मैंने अपने दिल की मनोव्यथा आचार्य श्री को सुनाई। मैंने कहा, "हम जैसे व्यापारियों को उद्योगों के चलाने में बड़ी ही कठिनाई होती है। हम चाहते हैं कि किसी को कोई रिश्वत आदि न दें। किन्तु सरकारी दफ्तरों से कोई न कोई आशा लेकर आया ही रहता है। जब व्यापारी उनकी आशा पूरी नहीं करते तो वे हमको किसी न किसी रूप में फंसा ही देते हैं। कोई न कोई झूठा-सच्चा केस भी बना लेते हैं। परिणामतः हमें न्यायालयों में चक्कर लगाने पड़ते हैं। हमारे समझ में नहीं आता कि हम क्या करें।"

आचार्य श्री ने मेरी व्यथा को बड़े ध्यानपूर्वक सुना और कहा, "मुझे यह बताओ कि आप जो कारखाना चला रहे हो, क्या उसे आप स्वयं चला रहे हो ?" उल्टा प्रश्न करने पर इस प्रकार मैं विचार करने लगा और मैंने उत्तर दिया, "जहां तक मेरा कारखाने के साथ सम्बन्ध है वहां तक उसे मैं ही तो चला रहा हूं।" आचार्य जी हंस पड़े और उन्होंने कहा, "बस यही तो बड़ी भूल है कि आप समझते हैं कि कारखाना चला रहे हैं।"

"कारखाना आप नहीं चला रहे हैं, किन्तु समाज चला रहा है। जिस प्रकार का समाज है वह कारखाना एवं उद्योग भी उसी प्रकार चलेगा।" जब उन्होंने यह बात कही तो मेरी आंख खुली और वर्षों से पड़ी मस्तिष्क की भूल निकल गई। मस्तिष्क पर जो बोझ था वह हल्का पड़ गया। **आचार्य श्री की बात-बात में भी बात छिपी रहती है। कभी-कभी वे थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ कह जाते हैं। उनके सामने जिस प्रकार का प्रश्न आता है, वे उसी प्रकार का मार्मिक उत्तर भी देते हैं।** महापुरुष एक प्रकार के नगारे होतेहैं। नगारा बजाने से ही बजता है। अपने आप स्वयं कुछ नहीं कहता। इसी प्रकार हम महापुरुषों के पास जाकर अपने जीवन की व्यथा को कहते हैं तो वे मन की व्यथा को दूर ही नहीं करते, बल्कि दिल और दिमाग को भी रोशन कर देते हैं।

● *हरिकिशनदास अग्रवाल*, तुलसी मानस प्रकाशन, बम्बई–१०

आज हुई बरसात अंगनवा मेरे

युग-युग की थी प्यास सजनवा मेरे !
आज हुई बरसात अंगनवा मेरे !!

झिरमिर-झिरमिर झरे रूप में भीजूं
नाचूं, गाऊं तेरी छवि पर रीझूं
एक तुम्हीं विश्वास, तुम्हें मन टेरे !
आज हुई बरसात... !!

मिले मुझे, जल मिला मीन को जैसे
मिसरी घुलमिल जाय नीर में जैसे
कैसे कृपा बखान करूं 'प्रिय' मेरे !
आज हुई बरसात... !!

तुम मुझको भाते मैं तुमको भाऊं
कैसे मैं वह स्वाद अपूर्व बताऊं
बन्धन टूटे मेरे सभी घनेरे !
आज हुई बरसात... !!

प्राणों के मंदिर में तुम सजते हो
सांसों की वीणा में तुम बजते हो
रोम-रोम में रहते सांझ-सबेरे !
आज हुई बरसात... !!

तुम मेरे प्राणों में ऐसे आये
अंधियारे में तड़ित कौंध ज्यों जाये
खिला फूल-सा 'प्रीतम', प्राण बसे रे !
आज हुई बरसात... !!

★

● *साधु योग प्रीतम*
[प्राध्या० हिंदी-विभाग,
भीलवाड़ा (राज०)]

नयनों से नीर नहीं बहता

नयनों से नीर नहीं बहता
मधु प्रेम बहा करता है !
ज्यों धरती उर को चीर सतत
झर-झर निर्झर बहता है !!

सागर की उत्तुंग लहरियों
सा यह मन होता है चंचल
'प्रिय' की प्यास बावरी करती
'उसकी' सुध में होता है बल
जब वियोग आनन्द बने तो
नयनन नीर कहां रहता है !
नयनों से नीर.....!!

निर्झर क्या जाने कहां चला
अनजान दिशाएं होतीं सब
वह क्या जाने कब निर्झर से
होता निर्झरिणी, सागर कब
निर्झर का सुख है झरने में
वह तो मस्त झरा करता है !
नयनों से नीर.....!!

निज अस्तित्व जहां मिटता है
जाती है सब टूट इयत्ता
'वह' असीम जो सूक्ष्म कहीं पर
कण-कण में 'उसकी' है सत्ता
बूंद नहीं आंसू की यह तो
इसमें ही सागर बहता है !
नयनों से नीर.....!!

● *'आकुल' राजेन्द्र*

['प्रिय'—रजनीश—के प्रति : वियोग के आनंद भरे क्षणों में लिखा गया गीत]

अं त स् विवेक

साधकों को ध्यान-प्रक्रिया की गहराई में उतरने पर अंतस् में जो विवेक अथवा बोध जागता है, उसकी झलक हमें कांतीलाल भंडारी के संस्मरणों में मिलती है, जिन्हें हम आगे दे रहे हैं।

दिनांक ४ नवम्बर १९७२ को दयाल बाग इन्दौर में स्वामी दिनेश भारती जी का ध्यान-साधना प्रयोग पर कार्यक्रम आयोजित था। सभी मित्र सुबह ९ बजे उपस्थित हो गए। स्वामी दिनेश भारती जी ने अपनी बात प्रारंभ की। आनंद शिला, बम्बई के बारे में विस्तृत जानकारी बताने के बाद वे संन्यास के बारे में कहने लगे और तभी मेरे अन्दर अचानक एक प्रश्न उठा, जो मैंने उनके समक्ष रखा। उन्होंने अपनी तरफ से उसका जवाब भी दिया, लेकिन न मालूम क्यों मुझे पूर्ण समाधान नहीं हुआ।

फिर मुझे भगवान श्री की एक बात का स्मरण हुआ—भगवान श्री से किसी ने प्रश्न पूछा था, किन्तु भगवान श्री ने उसका कोई उत्तर नहीं देते हुए, उससे यह कहा था कि—"मित्र उत्तर अपने स्वयं के अन्दर खोजो, उत्तर मिल जावेगा" और उस मित्र को उत्तर मिल गया था। यह भगवान श्री की बात मुझे बार-बार स्मरण होने लगी, और कुछ समय के पश्चात ही मैंने पाया कि उस मित्र को जैसा घटित हुआ था, वैसी ही मुझे भी अनुभूति हुई। मेरे प्रश्न का उत्तर जब मैं स्वयं के भीतर खोजने गया तो स्वयं से ही मुझे उत्तर प्राप्त हो गया।

मेरा जो प्रश्न था, और मुझे स्वयं से जो उत्तर मिला—वह मैं प्रस्तुत कर रहा हूं।

स्वयं का प्रश्न स्वयं का उत्तर

मेरा प्रश्न :

रजनीश जी यह कहते हैं कि सारे संप्रदाय मिटना चाहिए, धर्म एक है। सारी दुनिया में एक ही धर्म होना चाहिए। लेकिन संन्यासी की माला में रजनीश जी का जो लॉकेट है, वह उस व्यक्ति ने संन्यास लिया, और रजनीश

जी उसमें साक्षी रहे, इस बात का सूचक है। तो क्या इससे भी एक नये संप्रदाय का आभास नहीं होता है ? और इससे उपरोक्त उद्देश्य पूर्ति में बाधा नहीं पैदा होगी ?

मेरा उत्तर :

सभी व्यक्तियों में अध्यात्म की प्यास होती है। जिस व्यक्ति की प्यास जग जाती है, वह उस मंजिल की ओर बढ़ना चाहता है, जो कि उसकी परम अवस्था है। उस मंजिल तक पहुंचने हेतु उसे रास्ता तय करना होता है। उस रास्ते तक पहुंचने हेतु आज हम जिस स्थिति में हैं, वहां से कई अलग-अलग पगडंडियां निकलकर वहां पहुंचती हैं। जैसे बुद्ध की पगडंडी है, महावीर की पगडंडी है इसी तरह और भी पगडंडियां हैं। लेकिन जिस स्थिति में हम आज हैं, उसमें ये पगडंडियां हमारे लिए बहुत कठिन हो चुकी हैं, और हमारे लिए करीब-करीब धूमिल हो गई हैं। आज हम नये युग में हैं, और हम जहां हैं, जिस स्थिति में हैं, वहीं से हमें कोई पगडंडी मिल जावे तो हमारे लिये वह अधिक सुलभ हो सकती है।

आज के युग में रजनीश जी ने हमें वह पगडंडी दी है। बल्कि यह कहना चाहिए कि उन पुरानी पगडंडियों को अत्यंत सरल, सुलभ और स्पष्ट करके नये रूप में, नये आयाम में उन्होंने हमारे समक्ष रखा है—जिस पर हम जहां हैं वहीं से चलकर राजमार्ग—**साधना पथ**—पर पहुंच सकते हैं। और राजमार्ग पर पहुंचने पर पगडंडी भी अपने आप छूट जाती है, उसे छोड़ना भी नहीं पड़ता। फिर रजनीश जी भी हमसे छूट जाते हैं। उस 'साधना-पथ' पर हम ही रह जाते हैं और बढ़ते जाते हैं; और उस परम अवस्था को प्राप्त कर अस्तित्व में समा जाते हैं। फिर न किसी संप्रदाय का होना होता है, न किसी व्यक्ति विशेष का ही और न किसी उद्देश्य पूर्ति में कोई बाधा पड़ सकती है।

समभाव

दिनांक १९ अक्टूबर १९७२ को सुबह मुझे एक अनुभव हुआ और जैसा कि सुना था, जब भगवान श्री माऊण्ट आबू में शिविर लेते हैं तो वहां का सारा वातावरण चार्ज्ड हो जाता है। शिविर में मैं और मेरे मित्र माऊण्ट आबू गए हुए थे। दिनांक १८ को मेरी तबियत अचानक खराब हो गई। मुझे तेज बुखार चढ़ गया था, जिस कारण मैं रात को भगवान श्री के प्रवचन में नहीं जा सका। मेरे साथ मेरे कमरे में ही जो मित्र रुके थे, वे प्रवचन सुनने हेतु

निकल गये और मुझे मन ही मन बैचेनी-सी होने लगी कि मैं जा नहीं पा रहा हूं ।

फिर करीब रात के आठ बजने को आये थे और मैंने निर्णय किया कि मैं आठ बजे से (भगवान श्री के प्रवचन शुरू होने का समय) जब तक भगवान श्री का प्रवचन चलेगा, मैं मौन होकर और साक्षी भाव रखकर यह जानते रहूंगा कि भगवान श्री क्या कह रहे हैं । निर्णयानुसार मैं मौन हो गया और उसके बाद मैं कब नींद में खो गया मुझे पता नहीं ।

सुबह जब मैं उठा तो कमरे में मित्र आपस में बातचीत कर रहे थे । एक मित्र बोले कि उनकी तबियत खराब हुई थी, तो डाक्टर सा० को बुलाया था । उसके बाद दूसरे दिन वे खुद डॉ० साहब के घर गए थे, तो दोनों ही जगह डॉ० साहब ने एक जैसी ही फीस ली । यह बात सुनकर मेरे अन्दर से एकदम बात निकली कि समभाव रखते हैं डॉ० साहब, और तब ही उन मित्रों में से एक ने कहा कि रात को भगवान श्री ने समभाव पर ही पूर्ण प्रवचन दिया था । यह सुनते ही मुझे लगा कि भगवान श्री के प्रवचन की मुख्य बात मेरे अन्दर अपने आप उतर गई और सुबह आंख खुलते ही पहला शब्द निकला था — **समभाव** ।

इस प्रकार रात में भगवान श्री के प्रवचन के समय मैंने जो मौन रखकर साक्षी भाव का निर्णय लिया था, तो मुझे अन्दर बराबर अनुभूति हुई । समभाव पर ही भगवान श्री का प्रवचन हुआ था और मेरा पहला भाव भी समभाव का ही बना ।

मनोकामना की पूर्ति

हमारे भीतर जो भी आकांक्षा उठती है, उसे भगवान श्री प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में पूर्ण कर देते हैं। इसका अनुभव मुझे माऊण्ट आबू शिविर में हुआ । १३ अक्टूबर ७२ से प्रारम्भ होने वाले शिविर में मैं और मेरे साथ कुछ मित्र गए हुए थे । अशोक नाम के मेरे एक मित्र ने केमरा भी साथ में लिया था।

एक दिन दोपहर कीर्तन में जाते समय अशोक और मैं केमरा लेकर जा रहे थे । रास्ते में मैंने अशोक से कहा कि भगवान श्री का हम फोटो लेंगे, तो फोटो में इन्दौर के सब मित्र उनके करीब आ जावें । और भगवान श्री के साथ हम मित्रों का फोटो आ जावे तो कितना अच्छा होगा । अशोक ने कहा, "लेकिन भीड़ इतनी रहती है कि ऐसा होना असंभव-सा लगता है ।" उसके

बाद वहां मैंने भगवान श्री का फोटो लिया और कीर्तन में शामिल हो गया। दूसरे दिन सनसेट प्वाइंट पर हमने अपने कुछ और फोटो लिए।

इन्दौर वापस आने पर फोटो-प्रिंट तैयार करवाये और फोटो देखकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उसमें एक फोटो भगवान श्री के साथ में हम सब मित्रों का आया हुआ था। भगवान श्री ऊपर बैठे हुए हैं और हम सब मित्र उनके पास नीचे बैठे हुए हैं। और अब मुझे अचानक खयाल आया कि भगवान श्री का फोटो लेने के पश्चात कीर्तन में शामिल होने की जल्दी में मैं रोल को घुमाना भूल ही गया था और सनसेट प्वाइंट पर भगवान श्री के फोटो पर ही हम मित्रों का फोटो ले लिया गया। और इस प्रकार हम सब मित्र नीचे बैठे हुए तथा भगवान श्री हम सबके ऊपर, भगवान के समान जमीन से ऊपर उठे हुए दिखाई पड़ रहे हैं। और तब मन ही मन यह भाव उठा कि भगवान श्री ने अप्रत्यक्ष रूप से हमारी मनोकामना पूर्ण की।

● *कांतीलाल भंडारी,*
इन्दौर

एक भावोच्छ्वास

हे प्रभु—रजनीश !
यदि तुम न होते तो मैं यह कभी नहीं जान पाता
कि प्रभु इतना शान्त, इतना आनन्दमय, इतना प्रेममय
इतना मधुर, प्रिय और सुन्दर होता है
तुम न होते तो ईश्वर पर मेरी प्रतीति असम्भव थी
उसे लाख-लाख समझाने का प्रयत्न किया पर व्यर्थ गया
शब्दों की किसी व्याख्या पर विश्वास न हुआ
अब तू समक्ष है तो पाता हूं कि तू सच में अव्याख्येय है
तुझे शब्द में बांधने का कोई उपाय नहीं
तेरी उपस्थिति—मन कितना आनन्दित है, कैसे कहूं ?
कितना उपकार है तेरा—
मैं तो एक चरण भी आगे न बढ़ सका
और तू खुद ही चला आया है मेरे लिये
प्रभु, तेरी अनुकंपा अपार है !

● *साधु योग प्रीतम*

सम्बोधन

भगवान्‌ श्री के जन्म-दिन पर हम यहां भगवान श्री द्वारा दिए गए कुछ ऐसे उद्‌बोधक उद्‌गारों को दे रहे हैं, जिनसे सहज ही जीवन में प्रेरणा आती है। ये उद्‌बोधन भगवान श्री ने सन् '६२-'६३ के मध्य दिये हैं, और जिन्हें प्रस्तुत किया है — अरविन्दकुमार ने।

'खोज का अपना रस है, वह बात ही कुछ और है। वे ना-समझ हैं और जाने कैसे पत्थर दिल हैं, जो एकदम खोज लेना चाहते हैं।

कोई भी संवेदनशील व्यक्ति असीम धैर्य से कुछ भी न मिले, तो भी चलता चला जाता है। उसकी अपनी मौज और है। खोज का रस और है। खोज उसकी मौज ही है। रवीन्द्र नाथ ने गाया है : प्रभु तुझ तक पहुंचता हूं, पर भीतर दरवाजा खोलने का मन नहीं होता है और दबे पांव लौट आता हूं— कहीं तू मिल ही न जाए और जीवन का सारा रस खोज के समाप्त होते ही विलीन न हो जाए।'

मुझे भी नहीं लगता कि जीवन में कुछ भी एकदम से मिलने जैसा हो जाए, अन्यथा प्रभु-सत्ता के जगत में भी हमारी सौदा करने की प्रवृत्ति बनी ही रहेगी। प्रभु-सत्ता में होना तो अनंतता है। इसमें तो केवल हमारे प्रयास ही हैं और इस अनंत क्रम में तो भगवान श्री ने कहा है कि कभी पाया जाता है कि सारे प्रयास व्यर्थ हो गये और व्यक्ति प्रभु-सत्ता से भर आया। अपने से ही सभी सारे प्रयास गिर जाते हैं और व्यक्ति सहज चेतना की स्थिति में हो आता है।

प्रतीक्षा का अपना सुख है। और कभी जो होना होता है, वह सहज में अपने से हो आता है।

मनुष्य को लग सकता है कि उसकी ६०–७० वर्ष की जिन्दगी बहुत बड़ी है लेकिन पृथ्वी की उम्र के क्रम में और सूरज के तथा अन्य ग्रहों के अनुपात में जो कि अरबों वर्षों से हैं, मनुष्य का जीवन अत्यंत अल्प है।

इससे क्या अन्तर आता है कि खोज कब पूरी होती है— जन्मों-जन्मों में या कि इसी जन्म में। सभी कुछ अनंतता है तो जीवन में गणित का खेल कैसा...?

बस सहज हमें सब कुछ छोड़ना है—प्रभु-हाथों में, जो हो उसकी मर्जी।

★

'व्यक्ति के पास मन की अद्भुत क्षमता है, ठीक से मन पर प्रयोग किये जायें तो बहुत सी मन की सोयी शक्तियां जाग सकती हैं। सामान्य व्यक्ति मन की शक्तियों के तल पर ही जीना चाहता है और चमत्कार पैदा करना चाहता है।

यह आसान है। शक्ति और चमत्कार बताए जा सकते हैं—लेकिन यह वासना ही है, उससे साधक का कोई अर्थ नहीं। मन की शक्तियों से तो केवल वासना की पूर्ति होती है। इससे मैं नहीं कहता कि कोई शक्ति में या चमत्कार में उतरे, उससे तो केवल उलझाव बढ़ता है और सब मन की परिधि में घूमता होता है।

मन पर सम्यक् ध्यान योग के प्रयोग करके मन के पार हुआ जा सकता है। ध्यान योग से ही भीतर शान्ति-शून्यता घटित होती है।

ऐसी सहज शांत चेतना की अवस्था ही सन्तत्व है, भगवत्ता है। इसी स्थिति में श्रेष्ठ-आचरण व्यक्ति से बहता है और चित्त पर कोई तनाव नहीं छूटता। श्रेष्ठ आचरण को खींच-खींचकर लाना नहीं होता है, वह तो सहज उद्‌भूत होता है।

होता यह साधना से है, सहज विकास है। एक (Growth) है। यह ठीक वैसे ही है, जैसे आज कोई कली खिले और कल वह फूल बन जाए। यह फूल ही कली (Bud) का विकास है।

साधना ही सिद्धत्व की दिशा है।'

★

'व्यक्ति को ठीक से जानना चाहिए कि वह कितनी बातें जानता है और कितनी उसकी केवल सुनी हुई बाते हैं। सम्यक् साधना के लिए यह बोध आवश्यक है।

सुनी हुई बातें जीवन में तब तक कोई अर्थ नहीं रखती हैं जब तक कि वे स्वयं व्यक्ति की चेतना से उद्‌भूत न हों।

इस तथ्य को जानना ही चाहिए, तभी भीतर सृजन घटित होता है; अन्यथा भ्रम में जीना बहुत आसान है।

सामान्यतः व्यक्ति बुद्धि की सीमा में ही उलझ जाता है और उसका जानना मात्र औपचारिक होता है। प्राणों तक उसकी कोई अनुभूति नहीं गूंजती है।

चेतना के अन्तस्-स्फुरण ही सम्यक् बोध देते हैं और तभी सारा कुछ अन्तः की गरिमा से ओत-प्रोत होकर जीवन संगीत में आबद्ध हो जाता है। और तभी केवल कर्म-ज्ञान और भाव की सहजता प्रतिफलित होती है।'

★

'जीवन बहु विध है। उसमें संघर्ष से नहीं, सहयोग से निर्माण संभव है। संघर्ष से जीवन टूट जाता है, सहयोग से जीवन विकास पाता है। संघर्ष कर-करके व्यक्ति बुरी तरह टूट जाता है। इसी क्रम में व्यर्थ ही विरोध और आलोचना भ्रांत है।

मन के साथ भी किसी तरह के विरोध या संघर्ष में नहीं उतरना है। सहज उसे साक्षी भाव से देखना है, और कभी अनायास ही व्यक्ति भीतर की पूर्णता में हो आता है। सारा कुछ सुवासित हो जाता है।'

★

'आस्तिकता समग्र की स्वीकृति में है—The Total Acceptance में है। विरोध नास्तिकता है।

अच्छा-बुरा मनुष्य के देखने के ढंग में है। प्रभु के जगत में कुछ भी अच्छा-बुरा नहीं है। सब प्रभु-सत्ता की लीला है।

इससे कोई अपने-अपने तलों पर जीकर जीवन के प्रति अच्छे और बुरे का कैसा भी निर्णय ले सकता है। पर ये उसके अपने निर्णय हैं। प्रभु-सत्ता में तो सब कुछ स्वीकृत है। व्यक्ति के निर्णयों का मूल्य ही कितना है...न कुछ... क्योंकि अनंत विश्व-सत्ता में तो सब खेल उसी का है। जब खेल ही है तो अच्छा-बुरा कैसे !

हां व्यक्ति को लग सकता है कि कुछ अच्छा है, कुछ बुरा है; पर अंतिम परिणति में तो सब उससे उद्भूत है और उसी में समा जाता है। यह खेल तो सनातन है।'

★

'सत्य को, अस्तित्व को, सत्ता को, प्रभु को, निर्वाण को शब्द देना व्यर्थ है। सारी अभिव्यक्तियां मात्र मानसिक होंगी। इसी से मैं कहता हूं: तुम्हारी धारणा, विश्वास, विचार, भाव या तर्क, सब कुछ व्यर्थ है—अस्तित्व तक लौटने के लिए। उस तक तो निपट जगत जैसा है, उसे वैसा ही जानने के लिए व्यक्ति को अपने आपको खुला छोड़ना ही बस है।'

★

'जीवन अपने में निरर्थक है, जब तक कि जो सारभूत है, उसे न जाना जाय। जब भीतर सारा कुछ गल जाता है और व्यक्ति अपनी चेतना में खो जाता है, तभी सार्थकता का बोध होता है।

अनुभूति-शून्य व्यक्ति को तो भारतीय ग्रन्थों में जो योग-सूत्र हैं, उनके पढ़ने की मनाही है, क्योंकि योग-सूत्र तो केवल जब व्यक्ति को आंतरिक बोध उपलब्ध हो जाता है, तो उसके प्रमाणिक गवाह मात्र हैं। भीतर जब चेतना के लोक में व्यक्ति होता है, तब हीं उसे जो योग-सूत्रों में छिपे अर्थ हैं, वे प्रगट होते हैं।

कहते हैं, बुद्ध ने सबसे बड़ा झूठ कहा है। यह केवल तभी तक है, जब तक व्यक्ति-चेतना अपने में नहीं है। जैसे ही व्यक्ति बोध को उपलब्ध होता है, सारा कुछ जो पहले झूठ लगता है, वह खो जाता है और व्यक्ति अस्तित्व की सच्चाइयों में हो आता है।

पहली बार ही तब वह जानता है कि बुद्ध ने अस्तित्व के जीवन-सत्ता के तथ्यों को कहा है।

इससे ही जीवन-अस्तित्व के सूत्रों को पहले से कोई पढ़ले तो ज्यादा संभावना सामान्य स्तर के व्यक्ति की यही है कि वह केवल किसी भी तरह के प्रभाव में बह जाये और एक व्यर्थ की उलझन अपने साथ खड़ी कर ले।

प्रत्येक साधक को यह विवेक से जानना चाहिए कि केवल सम्यक् जीवन-साधना से उपलब्ध हुई भूमि पर ही जो पढ़ा जायेगा, वह अर्थ का होगा और उससे जो भीतर घटित हुआ है, उसका प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

★

'साधु हैं, पंडित हैं जो सहज में किसी व्यक्ति को धर्म की साधना में आने ही नहीं देते हैं। धर्म की साधना को कठोर नियमों से, व्रतों से आबद्ध किया है। बौद्धिक वर्ग इससे धर्म-साधना में उत्सुक होता ही नहीं है। इससे धर्म के सम्बन्ध में बहुत भ्रांत धारणायें व्याप्त हो गई हैं।

मुझसे लोग पूछते हैं कि मैं तो मांस खाता हूं, तो क्या आपकी साधना कर सकता हूं? मैं कहता हूं कि मांस से कोई फर्क नहीं आता, ध्यान की सम्यक् साधना करो— परिणाम में यदि मांस खाना छूट जाये तो फिर तुम जानना।

ऐसा हुआ है और बहुत से साधकों का परिणाम में शराब पीना, मांस खाना छूट गया है।'

भगवान श्री के पास इतनी सहज जीवन दृष्टि है कि कोई भी व्यक्ति उनके प्रेम में होकर, साधना-पथ पर बिना किन्हीं शर्तों के चलता है और परिणाम में फिर जो फलित होता है वह उसे स्वयं अनुभव करता चलता है।

भगवान श्री की जीवन दृष्टि को यहां मैं अपने शब्द देकर प्रस्तुत कर रहा हूं। भगवान श्री मुक्त भाव से कहते हैं—'जीवन में जो भी है, उसे सहज स्वीकार करते चलना है। सारा जीवन प्रभु तक ले आने को है। कुछ न करे व्यक्ति— सारे खेल को केवल देखता चले, अपने से कभी अनायास जीवन-सत्य में हो आता है। जानना है कि जो भी है, वह मुझे जीवन में कभी दिखा कि वह वैसा है, उससे कोई भागने की बात नहीं है और न अपने को हीन समझने की। उसे सहज स्वीकार करना है। कुछ भी जीवन में विरोध करने को नहीं मिला है। जो मिला है— वह सहज विकास करने को है, उससे जो विरोध करेगा, लड़ेगा, संघर्ष में उतरेगा और बाहर से दबायेगा—उससे और अधिक पीड़ा-परेशानी में वह पड़ेगा। यह कोई हल नहीं है। इससे व्यक्ति आत्म-ग्लानि में और कुंठा में हो आता है। जानना है कि जीवन में जो भी मिला है, वह सब व्यक्ति को एक सम्यक् वैज्ञानिक जीवन में ले आने को है। कुछ बुरा नहीं है— क्रोध, लोभ, मोह, काम, मद ये सारी व्यक्ति की शक्तियां हैं, इनको भोगकर कोई हल नहीं है—जीवन क्षीण होता जाता है; न इनको दबाकर कोई हल है, उससे जीवन कुंठित होता है। जानना है कि जो भी जीवन में है— उसे कोई गंदा कह सकता है, पर उस गंदी खाद से ही—जीवन-सत्य का फूल खिलता है, उससे कोई विरोध नहीं है। सारी शक्तियां जब अपने में— शान्त होती हैं, तो सृजन का फूल खिलता है। जीवन अपने से दिव्यता में हो आता है।

एक ही वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि है कि कुछ बुरा नहीं है। सब सहज प्रकृति से मिला है और व्यक्ति में संभावना है कि वह प्रकृति से ऊपर दिव्यता में उठ आए। इस दिव्यता में होने के लिए प्रकृति का विरोध नहीं है—केवल सहज सबके बीच अपने होश को बनाये रखना है—अपने से चित्त की, प्रकृति की वासना विसर्जित होगी और व्यक्ति कभी पायेगा कि जो शक्ति व्यर्थ की प्रकृति की वासनाओं की तृप्ति में व्यय होती थी, अब वह भीतर भगवत्ता के सृजन में हो आई है और वृत्तियों के परिष्कृत रूप में जीवन में सहज प्रेम, आनन्द के माध्यम से फूटती है। तब जाना जाता है कि केवल प्रकृति की वासना नहीं रही—और शक्ति अपने में शुद्ध होकर दिव्य मार्गों से बहने लगी। प्रकृति से, जो वासना व्यक्ति में सीमित थी व्यक्ति के दिव्य होते ही, वासना विसर्जित होते ही सारी शक्तियां प्रेम के माध्यम से सृजन के रूप में हो अभिव्यक्त होती है। खाद प्रकृति की वृत्तियों का होता है— अपने परिष्कार में

उनसे दिव्यता का फूल खिल आता और उससे प्रकृति की शक्ति अपने वैभव में होकर विश्व में सुवासित होती है।'

भगवान श्री का इतना वैज्ञानिक जीवन दृष्टिकोण है कि सारे क्लान्त, अतृप्त, अशान्त, निंदित, आत्म-कुंठा और ग्लानि में हो आए या सहज जीवन में चलते पथिकों को—एक अमृतत्व में ले आता है। .....

★

भगवान श्री ने जो आध्यात्मिक असंतोष का दिव्य प्रसाद सारी मनुष्यता को बांटा है—उसे अपनी ही भाषा में आपके समक्ष रख रहा हूं।

'मैं नहीं कहता कि सन्तुष्ट हो रहो। संतुष्टि मृत्यु है। मैं आपके भीतर अतृप्ति की आग, एक बैचेनी, एक छटपटाहट को जन्म देना चाहता हूं—जिससे व्यक्ति को रास्ता मिल सके। प्यास भीतर जाग आये तो पानी को खोज लेना निश्चित है—ठीक वैसे ही भीतर एक Divine Discontent हो आये, तो पूर्ण शांति में छलांग लग जाती है। सारा सन्तोष केवल मृत्यु को देता है— उससे कोई जीवन सत्य में नहीं हो सकता है। इससे मैं तो आप में एक तड़प देना चाहता हूं—उस दिव्य को पा लेने की। **जैसे दिये की बाती— पहले पास में तेल को इकट्ठा कर रोशनी देती और बाद में स्वयं जल जाती है वैसे ही समस्त इच्छायें उस दिव्य को पाने की प्यास में एकत्रित होकर लग जायें, तो दिव्य बोध तो व्यक्ति को हो ही आता है, और साथ में जो दिव्यता में होने की इच्छा थी, वह भी विसर्जित हो जाती है—व्यक्ति अपनी शुद्ध सत्ता में हो आता है।** जानना है केवल अपने भीतर उठते असंतोष को, दुख को, पीड़ा को—उसे ढकना नहीं है—और भूलना नहीं है। जीवन दुख है— इस तथ्य को प्रकृति कई तरह के आयोजन करके ढकती चलती है। इसे देखना है और अपने भीतर असंतोष की, दुख की, पीड़ा की तरंगों को देखना है और तभी जीवन से अनायास मुक्ति-बोध की ओर व्यक्ति उन्मुख हो जाता है। कुछ न करे—केवल जीवन के सारे क्रम को व्यक्ति देखता चले, तो मुक्त हो आता है।

एक ओर व्यक्ति का अनन्त दुख है, दूसरी ओर उसकी उस दुख से उठने की एक प्रेरणा भी है, पर जीवन की मजबूरियां और सारे जीवन की राहें—उसके संकट उसे अनन्त में होने से रोक देते हैं और व्यक्ति के छोटे से जीवन में बात रोज कल पर टलती जाती है। कभी अचानक मृत्यु आ रहती है और व्यक्ति का सब कुछ समाप्त हो रहता है।

मैं कहता, दुख वरदान है। उससे असन्तोष आता— और यह असंतोष ही व्यक्ति को मुक्ति में ले आता है। इससे मैं आपमें वह असंतोष जगाने आया हूं— जो जग आये तो जीवन की शान्त मौन आनन्द की अवस्था निश्चित है।

● प्रस्तुतकर्ता : *अरविन्द कुमार*

शायद कभी सम्भव हो सके !

हे परमात्मन् !
तूने हम अन्धों को
आंख दी
और
हमने तुझमें भगवान देखा
किन्तु तूने हमें स्वतन्त्रता भी दी
कि शायद हम स्वतन्त्र ही हैं
कि हम अपने में भगवान देखें या न देखें
इसलिए अभी तो तू ही भगवान है
बस तू ही है
और जब शायद कभी
मैं भी हो जाऊं
तो तू भी न रहे और मैं भी न रहूं
एक हो जाएं — अद्वैत
अहम् के प्रणाम शून्य को !
क्या अहम् कभी प्रणाम कर सकता है—
बिना परमात्मा को जाने ?
और शायद तब आवश्यक भी नहीं
शायद परमात्मा की अनुभूति ही प्रणाम है
क्या करूं, अभी तो मजबूरी है
शायद कभी सम्भव हो सके !

● *स्वामी चैतन्य कीर्ति*

स्तुति

जिनकी प्रशंसा अनन्त जिह्वाओं से भी असंभव है
जिनकी स्तुति असंख्य ऋषियों ने
असंख्य वचनों से की है और फिर भी कहा कि स्तुति नहीं हो सकी
जिनकी अमृत-वाणी झरती है तो सूरज और तारे उद्वेलित होते हैं
और समस्त सौर-मण्डल प्रकंपित होता है
और महासागरों में बेतरह उफान आते हैं
और वृक्षों और हवाओं को ध्यान घटित होता है
और पत्थर और पहाड़ भी पिघलकर पानी हो जाते हैं—
आज ११ दिसम्बर उन्हीं महा प्रभु का जन्म-दिन है
मैं भी उनकी स्तुति करने में असमर्थ हूं
आज तो मैं उनके जन्म-दिन पर उनके प्रेमियों की ही स्तुति करूंगा
हां, ईश्वर समर्पण व सत्य बोधिसत्व व उन सबकी
मैं स्तुति करता हूं, जो तन-मन-धन से प्रभु को समर्पित हैं
आज मैं चन्द्रकान्त, आनन्द मधु व कीर्तन मंडलियों के
अनेक संन्यासी-संन्यासिनियों को नमन करता हूं
जो घर-बार छोड़कर प्रभु के विचारों को फैलाने में संलग्न हैं
आज मैं क्रांति, कुसुम, कपिल, मीरा, भारती, सोहन, गुणा, विभूति, लक्ष्मी,
आनन्द वेदान्त और दिनेश जैसी असंख्य राधाओं को श्रद्धा प्रगट करता हूं
जो कि '*रजनीश के प्रेम*' में पागल हैं
आज मैं उन सब को प्रणाम करता हूं
जो रजनीश के प्रेमी हैं
अथवा जिनका केवल उनके विचारों से प्रेम या परिचय है
अथवा जिन्होंने केवल उनका नाम सुना है
और अंत में, आज मैं उन सब के प्रति अपना अपार प्रेम प्रगट करता हूं
जिन्होंने भगवन् का नाम तक नहीं सुना है
और जिन्हें खबर तक नहीं है कि
इस सदी में कोई हुआ जा रहा है
जिसके लिए युग और कल्प तरसते हैं !

● *स्वामी अगेह भारती,*
जबलपुर (म. प्र.)

श्री रजनीश जी
के शिक्षक गुरु
का
आत्म-निवेदन

परीक्षित की दीक्षा से अदीक्षित

मेरे आत्म बन्धु,
तुमने सत्य का एक बिन्दु पाया है
तुमने अनुभव किया
अनेकों को अनुभव कराया
जैसे सत्य के सिन्धु में
शान्ति का गोता लगाया है

'मैंने' तुम्हारे शिशु को
श्यामपट पर केवल 'अक्षर'
लिखना सिखाया है

तुम्हारे 'मैं' ने मेरे 'मैं' को
अक्षर अक्षरशः 'अक्षर' होने का
विशुद्ध प्रमाण बताया है
तुम्हारे और मेरे मध्य 'मैं' में
जो कुछ श्रवणों के माध्यम से
भीतर और बाहर
आ जा सका

समय की सीमा के कूलों पर
मान्यताओं और धारणाओं के फूलों पर
पराग से अंकुरित होकर
सत्य को अब तक आंकती हुई
आंखों ने तुम्हारे 'मैं' को
भगवान बताया है

मैंने अपने में कुछ न पाकर
अपने आपको कुछ बनाया नहीं
अपना बना बनाया अब तक
संतोष से अपनाया है

मैं अपने दीक्षित की दीक्षा से परीक्षित हूं
पर अपने परीक्षित की दीक्षा से अदीक्षित हूं

आपका—
वह, जो अपनी 'मैं' से
कुछ नहीं पाता !

जी. पी. कुरैली,
पो. आ.–सिहोरारोड
जि० : जबलपुर

स्मृतियों के इन्द्रधनुष

आनन्द इकट्ठा नहीं है

९ फरवरी, १९७०... बम्बई-हावड़ा मेल से प्रभु जी पटना जा रहे हैं। गाड़ी आने में कुछ मिनटों की देर है। हम प्रतीक्षालय में जाकर बैठ गये हैं।

कुछ इधर-उधर की बातों के बाद मैंने कहा, "प्रभु जी, आज सुबह से मैं बड़ी मानसिक तकलीफ में हूं।" मेरा कहने का ढंग इतना अचानक था कि प्रभु जी थोड़ा हैरानी से मेरी ओर देखने लगे। मैंने आगे कहा : "आज सुबह से ही मुझे बार-बार लग रहा है कि जो आनन्द पर आश्रित हो, वह आनन्द नहीं है। और तभी से आपके प्रति भी एक अरुचि अनुभव कर रहा हूं। क्योंकि आप जब मिलते हैं तब आनन्द मिलता है। जब आप नहीं होते तो फिर वही दुख...वही पीड़ा। क्या फायदा ऐसे आनन्द से ?"

प्रभु जी ने कहा : "यही तो हमारी तकलीफ है कि हम इकट्ठा आनंद चाहते हैं। और इकट्ठा आनन्द जगत में कहीं है नहीं। असल में गलत आकांक्षा ही हमारे दुख का कारण है। एक क्षण को भी आनन्द मिलता है तो क्या कम है। अगर वह भी न मिले तो हम क्या कर सकते हैं। और आनन्द इकट्ठा नहीं मिलता। इकट्ठा मिल जाय तो वह भी बन्धन हो जायगा, वह भी ऊब हो जायगा। क्षण-क्षण में आनन्द लेना चाहिए। हम बाहर कुछ नहीं कर सकते। भीतर अपने चित्त के साथ ही कुछ कर सकते हैं। हमारे चित्त की ऐसी दशा हो सकती है कि हम क्षण-क्षण में आनन्दित हो सकें। और तब सारा जीवन आनंद बन जाता है। लेकिन आनंद इकट्ठा नहीं है। वह क्षण-क्षण में ही मिलता है।"

इतनी ही बात हो पाई है कि ट्रेन आ गई। प्रभु जी ने कहा, "पटना से लौटकर तुमसे बात करूंगा, मिलना।" वे गाड़ी में बैठ गए हैं और अब गाड़ी जा चुकी है। मैं मन ही मन सोच रहा हूं, अब पटना से उनके लौटने पर इस सम्बन्ध में मिलने की जरूरत नहीं रही। वे थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कह गये हैं। मुझे राह मिल गई है। गलत आकांक्षा ही मेरे दुख का कारण है।

अभी ठहरो

एक बार मैंने प्रभु जी से कहा, "प्रभु जी, आपने कभी कहा है कि जो बुद्ध को ठीक से सुनेगा, वह दुबारा उनको सुनने ही नहीं जायेगा। वह उनसे चिपकने के बजाय, दूर, अकेला हो जायगा और अपने में डूबने का यत्न करेगा। इस आशय के वक्तव्य आप बार-बार देते हैं। और जब भी आप ऐसा वक्तव्य देते हैं, मेरे भीतर एक तीर-सा चुभता है। क्योंकि मैं भी चाहता वही हूं जो 'अल्टीमेट' है — जो अन्तिम है। जिसे आप शून्य और महाशून्य कहते हैं, उससे कम में मैं भी राजी नहीं हूं। पर आपके साथ भी लगा हुआ हूं। आपसे चिपका हुआ हूं। आप सब कुछ जानते हैं। अतः कृपा करके जिसमें मेरा हित हो वह मुझे बतायें। क्या आपको छोड़ दूर चला जाऊं!"

प्रभु जी धीमे मुसकाते हुए कहते हैं—"अभी ठहरो।" और मैं अभी भी ठहरा हुआ हूं। मगर इस प्रतीक्षा में नहीं कि वे कहेंगे कि अब जावो। मैं जानता हूं वे कभी नहीं कहेंगे कि जावो। जब तक कोई अकेला होने के लिए किसी से पूछता है तब तक उसमें अकेला होने की पात्रता, योग्यता, क्षमता व साहस कुछ भी नहीं है। जिस दिन कोई उस अवस्था में पहुंचेगा, उस दिन वह अकेला हो ही जायगा, पूछने का सवाल नहीं है। मैं ठहरा हुआ हूं उस क्षण की प्रतीक्षा में जब मेरी ऐसी स्थिति हो जायगी कि पूछना नहीं होगा। बस जहां हूं वहीं से प्रभु को धन्यवाद देकर, प्रणाम करके अकेला हो जाऊंगा। मेरी समझ है कि जब तक पूछने की जरूरत है तब तक अकेले होने की हिम्मत नहीं है। पूछना भी मन की ही एक चाल है।

● *स्वामी अगेह भारती*

भगवान श्री रजनीश ने कहा—

जीवन को एक कला की भांति लेना चाहिए। अगर इसमें झूठ भी बोलना पड़े तो घबराना नहीं चाहिए, परन्तु ऐसा झूठ जो किसी को कष्ट न पहुंचाए। जिंदगी में हर चीज अगर सचाई में ढल जावे तो जीना दूभर हो जाय। जीने की कला इसी में है कि उसमें सभी रंग हों।

अगर एक चित्रकार यही मान बैठे कि मैं सिर्फ सफेद रंग से चित्र बनाऊंगा तो वह निश्चित ही चित्र नहीं बना पायेगा। वस्तुतः विभिन्न रंगों के समुचित प्रयोग का ही नाम है कला। वरना ऐसी कई सचाइयां हैं जो युद्ध करवा देती हैं और ऐसे भी झूठ हैं जो झूठ होते हुए भी जीवन में सुखद वातावरण बनाने में सहायक होते हैं। ● संकलन : *सबसुख*

कुर्सी उलट पड़ी

आचार्य श्री का बड़ौदा में पहली दफा आना हुआ था, करीब छ: साल के पहले। व्यवस्थापकों ने उस समय अपरिचित व्यक्ति के रूप में व्याख्यानों की व्यवस्था की थी। ऐसा लगा कि एक प्रेस कॉन्फरेन्स भी बुलाई जाय तो अच्छा होगा जिससे ज्यादा लोग उनके बारे में जान सकें। प्रेस के प्रतिनिधियों को खबर पहुंच गई थी। समय हुआ, थोड़े प्रतिनिधि समय पर आ पहुंचे। कुछ इन्तजार करना पड़ा। कुछ समय के बाद सभी आ पहुंचे। कार्यवाही शुरू हुई। मैं कुछ जल्दी में आकर, एक खाली कुर्सी खींचकर बैठा कि कुर्सी उलट पड़ी। मैं उलट पड़ा और समझ न सका कि अचानक क्या हो गया। सब हंस पड़े। बाद में जान पाया कि यह कुर्सी का एक पांव टूटा हुआ था और मेरे मित्र ने ही उसको सम्हालकर बाजू की कुर्सी के साथ टिकाकर रख दिया था।

आचार्य श्री बाजू में बैठे थे। उन्होंने मुस्कुराकर कहा—"कुर्सी की आदत यही होती है। खुद गिरती है और दूसरों को गिराती है।" कितना सत्य ! मैं मर्म समझ गया। बाद में मैं आचार्य श्री से जब भी मिलता हूं तब नीचे ही बैठ जाता हूं। यह देखकर आचार्य श्री मुस्कुराते हैं।

मेरी स्मृति में यह सत्य अंकित हो गया है— "कुर्सी की आदत..." मैं आचार्य श्री का सदा के लिए ऋणी हूं। हे ! दिव्य पंथ के प्रवासी, अविभक्त चेतना तुम्हें मेरे शत-शत प्रणाम !

● ***नवीन शाह 'पथिक'***, बड़ौदा

भावोद्गार

मेरे प्रभो,

मैं आपके लिए कुछ लिखना चाहती हूं। मगर जब लिखने बैठती हूं, तो आपका कोई ओर-छोर हाथ नहीं आता। प्रभो ! आकाश को छुआ जा सकता है, हवा को मुट्ठी में बांधा जा सकता है; मगर भगवान आपके लिए कुछ लिखना या कहना बहुत असंभव है। प्रभो ! आप इतने विराट् हैं, इसमें डूबा तो जा सकता है, लेकिन लिखना कठिन है। जब से आपको देखा है, ऐसा लगता है जैसे मेरा जीवन ही बदल गया है। अन्त में भगवान के चरणों में मेरा बार-बार प्रणाम, मेरा प्रणाम स्वीकार करें !

● **तृप्ता सींगल**, लखनऊ

अब मुझे जुदा नहीं रहना....

सबसे पहली बार अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में भगवान के दर्शन हुए। सुनने में लगा कि अन्दर कुछ सरसराहट हो रही है, पर पिछले सारे ज्ञान का बोझ दबा-दबाकर कह रहा था कि शायद ये पागल हैं। और फिर खुद का पागलपन हिलना शुरू हो गया था। चार प्रवचन सुने। फिर सारा साल एक हलचल का था।

फिर प्रभु आए, फिर वही सम्मेलन। कुछ संन्यासियों ने झगड़ा किया और क्योंकि निर्मल स्वामी के आश्रम में ये सब हो रहा था, उन्होंने कोशिश की कि काम्प्रोमाइज़ हो जाए; पर पिछली शंकायें ही एक ही झटके में छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। फिर चार ही प्रवचन थे और उसके बाद पूरे साल की लम्बी प्रतीक्षा थी। यहां कहीं टेप रिकार्डर से उनके दो शब्द कान में पड़ जाएं तो लगे कि मैं पिघला जा रहा हूं।

उसके बाद उनका वेदान्त सम्मेलन में आना नहीं हुआ, कैनेडी कॉलोनी में आए। सुना, पर अब पागलपन सवार हो गया। लगता था, उन्होंने मुझे नये जगत में छोड़ दिया, जहां कि मुझे पता ही नहीं लग रहा था कि क्या करूं, क्या न करूं ? पहली बार वहीं उनके कमरे में २–४ मिनट ठहरने का सौभाग्य मिला। और...कैसे कहूं कि उन्हें मैंने देखा ! जो वे कहते हैं वह अज्ञात सागर से आता है और अब मेरी हालत अजीब है। ज्यों ही मुझे उनका खयाल आता है तो रोता हूं और मन ही मन प्रार्थना करता हूं कि हे ! मेरे प्राण, कब तक मुझे इतनी दूर रखोगे, समय बीत रहा है। मेरी प्रार्थना वे जरूर सुनते ही होंगे। मेरी तन्द्रा तोड़ने वाले, अब तो बुला ले ! युक्रांद या ज्योति शिखा आ जाती है और मैं पागलों की तरह नाचने लगता हूं। ये मुझे क्या हो गया है; पर मुझे पता है अपने आप तू मुझे दूर नहीं रखेगा। तुम्हें मेरे अनन्त प्रणाम !

जीसस के बारे में एक गोस्पेल लिखने वाले थे सन्त लूके। उन्होंने सारी उम्र जीसस को नहीं देखा, पर उसकी खबरें लूके तक पहुंच जाती थीं। उन्हीं के आधार पर उन्होंने सारा गोस्पेल लिखा। मुझे भी कहीं वैसी ही संज्ञा तो नहीं देंगे ? नहीं, मैं तो भगवान को देख पाया, अब मुझे जुदा नहीं रहना !

● *मनोहर*

ओ ! करुणा के पुंज नमन !
अर्पित तुमको मेरा तन-मन !!
हिम प्रस्तर-सा मेरा यह 'मैं'
धीरे-धीरे द्रवित हो रहा
कृतज्ञता का लिए कमण्डल
तेरे पावन चरण धो रहा
तज कठोरता तरल हो रहा
जड़ता तज गतिमान हो रहा
उछल-कूद करता-सा 'वह'—
अनजान राह पर चला जा रहा
तव असीम फैली बांहों में
जगह पा रहा, बढ़ा जा रहा
आकांक्षा इतनी ही अब तो
मिटता जाऊं, लुटता जाऊं
गांव-गांव में डगर-डगर पर,
तेरे करुण गीत मैं गाऊं
नमन रहे बस शेष चरण में
'मैं' न बचूं, ऐसा कर देना
भरी प्रेम से मेरी झोली
औरों की भी तुम भर देना
प्रेम - मूर्ति तेरे पद - चुम्बन
से कृत-कृत हो नाच रहा मन
ओ ! करुणा के पुंज नमन !
तेरे चरणों में नमन, नमन !!

● *स्वामी परमानन्द भारती*
अजमेर

तुम कहां हो ?

तुम कहां हो ढूंढ़ता हूं
यह अंधेरा और मेरी
चेतना का दीप कम्पति
किरण निगले जा रही है
वेदना के मीत धूमिल
पार हो जाता अद्वैती
चेतना से आवरण अनु--
भूतियों की आस्था में
मैं नहीं हूं, हूं कहां पर
कौन हूं मैं ? कौन हूं मैं ?
कौन हूं मैं ? .....

एक प्रज्ञा पुरुष शक्ति
खोज की यह कामना ही
तृप्ति के, संतृप्ति के
संकल्प मेरी चेतना के
स्वयम् की औ' स्वयम् में
स्वयम् के द्वारा अहम् में
तिलमिलाकर जाग जाता
बोध निज का ... ...
प्राण परिवर्तन हुआ जग
आज जिसका ... ...

ढूंढ़ने में जो मिला—
मुझको समत्सुक
उर्ध्वगमनी चेतना को—
स्वप्न में ढूंढ़ा
मिले संन्यास में तुम
और तब मैं जान पाया
तुम स्वयं मुझमें छिपे हो!

● *योग अशेष*

भगवान श्री
के प्रति
श्रद्धा-सुमन

कहां आप ! कहां मैं !

आप इतने नजदीक से बह गये कि मेरी सब सजगता ले गये
आप सागर की लहरों को पीते रहे, मैं भ्रमित जल पर ताकती रही
आप अषाढ़ी सांझ बन झरते रहे, मैं बैसाखी धूप में तपती रही
आप आकाश की माया सुलझाते रहे, मैं हृदय की बातों में उलझी रही
आप प्रकाश बन बिखरते रहे, मैं बुझे अंगारों पर फूंकनी लगाती रही
आपके पुनीत चरण की आहट में, मेरे सूने मंदिर की घंटियां बज उठीं
आप पैगम्बर द्वार पर दस्तक दे खड़े हैं, मैं उपेक्षा से कहीं प्रमाद में लेटी न रह जाऊं !
आपकी आधी-अधूरी मीरा के प्रणाम !

● *मा योग मीरा*, जूनागढ़

ओ चितेरे !

मेरी आंखों के केनवास पर
वर्णमाला रहित भाषा में
ओ ! चितेरे
ये—ये क्या लिख दिया
परिचय विहीन रंगों की

झिलमिलाहट में
संस्कारों की सभी बहारें
कुम्हला गईं !
अनबोई अनुभूतियां
प्रकट हुईं मुझ में—
दिव्यालोक से !!

● *देवेन्द्र*, पन्ना (म० प्र०)

कृष्ण फिर आज आया है

मनुज के कर्म से ऊपर
धरा के धर्म से ऊपर
उदित इतने मुदित होकर
नवोदित प्रेरणा के स्वर

जागरण के लिये जागे
जगाने के लिये आगे
पांचजन्य फिर उठाया है
कृष्ण फिर आज आया है

हैं गहरी नींद में हम तुम
हजारों वर्ष की तंद्रा
इसी को मानकर जीवन
नहीं टूटी कभी निद्रा

वही मंदिर वही गिरजा
वही मस्जिद वही सिजदा
भटकते ही रहे अब तक
मगर ईश्वर कहां मिलता

स्वयम् की नाभि में अमृत
हिरण-सा खोजते बाहर
रुके पथ पर समझ मंजिल
लहर को मानकर सागर

वही भ्रम तोड़ने रजनीश
जन्मे हैं अजन्मे ईश
तिरोहित कर दिया तम को
प्रकाशित आप में जगदीश

न भटको आत्म-केंद्रित हो, जगाओ आंतरिक स्वर को !
समर्पण - राह अपनाओ, चलो रजनीश गुण गाओ !!

● *डा० डी० पी० जैन, ओधव*

प्रेरणा-सूर्य रजनीश

प्रथम तो
प्रेरणा के सूर्य प्रभु रजनीश ने
शोषित किया—
मेरी कल्पना के जलधि को

और अब तो—
हृदय-नभ के पाश में
भाव बादल घिर चुके हैं
होगी— अब अवश्य होगी
श्वासों की लय पर—
संगीत-वर्षा, ध्यान-वर्षा
उमड़ेगी चेतना नदी
शास्त्र और पुराणों के
पर्वतों से दूर-दूर
ऊसर-अशांत
कसमसाते कछारों में
खिला करेंगी—प्रेममय कलियां वहां
गूंजा करेंगे—भ्रमर सब चैतन्य हो
जीवन पाने के लिये
नर्तन करेंगे मुग्ध हो
गाया करेंगे 'मित्र'
मेरे प्रेम-गीत !

● *अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'*,
बिर्नकी (सिवनी)

४२ वां जन्म - दिवस
४२ पंक्ति श्रद्धा-सुमन

बधाई सतत साधना के इकतालीस वर्षों को !
और अनंत शुभकामनाएं उनको जो शेष हैं !!

★

तेरे समस्त संबोधन विवादास्पद क्यों न हों
व्याख्या युग-पुरुष तेरी कैसे हो ! कौन करे !
कहकर भगवान श्री संतुष्ट हुआ कोई
और किसी को बड़ा कष्ट हुआ, ठेस लगी
पत्थर में भगवन् की प्राण-प्रतिष्ठा है
पावन पुस्तक के शब्दों में प्रभु की वाणी
घंटी जब बजती है प्रभु सो जाता है
ऊंची आवाजों से खुदा जग पाता है !

★

आकाश का विस्तार कैसे पाए कोई !
जगत-प्रेम की पीड़ा मधुरतम हुई कैसे !
मन की दुर्गन्ध अगरबत्ती से सुगंधित है
श्वास-श्वास की सुगंध कैसे पाए कोई !
अगणित वर्षों के धर्म और संस्कार जटिल
जाने-अनजाने सब हावी हो जाते हैं
तन-मन आक्रांत और अशांत अवस्था दयनीय
सम्मुख जीवन-सरिता प्यासे रह जाते हैं !

★

विश्व के अधिकांश लोग भूखे और अर्धनग्न
विक्षिप्त, भ्रांत समाज की व्यवस्था है
संकुचित राजनीति नेता अवसरवादी
शक्ति और पद का दुरुपयोग होता है

इनसे बहुत आगे विचारक हैं शुभचिंतक
'वसुदैव कुटुंबकम्' जहां सार्थक होता है
चतुर्दिक प्रेमदृष्टि सुख-शांति-आनंदमय
जीवन-स्रोत जहां प्रतिपल ही बहता है !

★

जीवन-रहस्य की गहराई के प्रति उन्मुख
विश्वजनित ज्ञान छान-छान के पीने वाले
स्वाध्याय चिंतन से अभिप्रेरित आनंदित
सहज-सरल-व्यावहारिक सूत्र दिये हैं तूने
श्वास-श्वास जीवन-संगीत सुरों के साधक
विश्व-प्रेम-शांति के अमर गीत हैं तेरे
बहुतेरी धड़कन हैं आनंदित आन्दोलित
जीवन की परम अवस्था स्पन्दित है !

★

आत्मीयता के सम्बन्ध बड़े अद्भुत हैं
स्वर्ग और मोक्ष की बात नहीं भाती है !
मृत्यु जहां जीवन को विश्राम देने लगे
थके शरीर को ज्यों नींद बहुत भाती है
युग-युगांतर तक जन्में और सान्निध्य रहे
सौ-पचास साल में हजार साल जी जायें
जीवन भी एक दिन युगातीत हो जाए
भगवान धरती का इंसान हो जाए !

● *काळू*
[इंद्रदेव चोपड़ा,
गाडरवारा*]*

★

कैसे कहूं 'कुछ' ?

मेरे मित्र !
आह ! कैसे कहूं कुछ ? कैसे ??
कि वो 'रजनीश' !
या भगवान !!
जो अनाम—औ' शब्दातीत
शून्य कहूं या कहूं पूर्ण ?

मित्र ! कैसे कहूं 'कुछ' ? कैसे ??
वो शब्दों के पार—
मेरी समझ के बाहर—पहुंच के बाहर
ऐसे उस 'रजनीश' को—
उस 'मुखर-मौन' को मेरे मौन प्रणाम !
मौन ! बिलकुल मौन ! ! और मौन ! ! !

● *स्वामी दयाल भारती*

करुण निर्मोही

र ज नी श

हो निर्मोही प्रमोही तुम !
छलिया हो—
जग को छलते हो
छलावा भी तेरा
कैसा है—लुभावना !
छल-बल से भी
करुणा ही बरसाते हो !
जिसका भी पाते हो—
उर-अंतर रिक्त
चुपके से आकर
भर जाते हो—
निश्छल, शाश्वत, मधुर
'निज प्रेम' से
पराग-सा ज्यों पुष्पों में !
फिर—
चाहे प्रेमी या जिज्ञासु
ही क्यों न हो

आकुल राजेन्द्र

इस जग के वन में
उपवन में
नये-नये रूपों में
भिन्न-भिन्न फूलों में
खिलता है
बिखरता है
और बिखरकर भी
'सुवास' ही बिखराता है !
और यह 'सुवास'
किसी और प्यासे के
अंतर में उतर जाती है
फूल खिलाती है
पराग बन जाती है !
और यह जो क्रम
चला है, चलता रहेगा
—निरन्तर
जब तक कि

अस्तित्व का अंतिम कण भी 'सुवास' से न भर जाये !
फूल-सा न खिल जाये !! ... ... झर जाये !!!

तुलसी मानस प्रकाशन

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३–००
२. ज्ञान साधना : २–००
३. विज्ञान से ज्ञान : १–००
४. वेदान्त-नवनीत : २–००
५. वेदान्त का सरल बोध : २–००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ३–००
७. आध्यात्मिक डायरी ७–५०
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंग्लिश) पाकेट बुक ६–००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद उपन्यास) ५–००
१०. मन की शांति (पद्य) : अंग्रेजी 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ४–००
११. हमारी परंपरा : २–००
१२. आराम सुख शांति और आनंद : १–००
१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. अपनी ओर इशारा : १–००
१५. व्यवहारिक जीवन और परमात्मा : १–००
१६. श्मशान यात्रा : १–००
१७. मेरे १०८ गुरु : ३–००
१८. सजगता : १–००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २–००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन: २–००
२१. चिंता और निश्चिंतता : २–००
२२. मन के पार : विकट प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर : १–००
२३. घर-घर की समस्या : २–००
२४. पीस आफ माइन्ड : (अंग्रेजी में) ५–००
२५. क्वायटर मोमेन्ट्स : (अंग्रेजी में) : २–००
२६. मनन योग्य बातें : १–००
२७. उनके सान्निध्य में : २–००
२८. जाग रे जाग ४–००
२९. जाग्रत-जाग्रत : ००–५०
३०. आधुनिक वेदान्त : २–००
३१. आंखों देखी २–००
३२. बात-बात में बात ३–००
(आध्यात्मिक उपन्यास)
३३. अध्यात्म–नवनीत २–००
३४. साधना शिविर ३–००
३५. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक वार्षिक शुल्क : ५–००

ग्राहक एवं एजेन्ट्स, पत्र-व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी
गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

(शेष कवर २ का)

रहे हैं कि बिलकुल ठीक है। क्या मैं पीछे देख सकती हूं ? सब उनकी ही लीला है। वे ही कुछ कर रहे हैं। ऐसे विचार चल ही रहे थे कि मुझे फिर दूसरी जिज्ञासा जागी कि कितने बजे रात को कहां, किस जगह पर भगवान श्री को ज्ञान हुआ।

उसी समय मैं पूछ बैठी : "उस रात कहां गये थे ?"

भगवान बोले : ***'भंवरताल के बगीचे में'।***

जैसे ही उन्होंने कहा कि बगीचे में, मुझे एक दरख्त की याद आई। मैंने कहा : "बगीचे में जाकर अशोक के दरख्त के नीचे बैठे थे ?"

वे बोले नहीं, **'मौलश्री'** के नीचे था।"

फिर मैंने पूछा १२ से ३ बजे तक बगीचे में थे तो घटना कितने बजे रात को घटी ?"

वे बोले : "तू सोच तुझे याद आ जायगा।"

मैं थोड़ी देर चुप रही, तो उस रात के वे सारे दृश्य आंख के सामने आने लगे कि कैसे घर से गये, किस तरह धीरे से मुझे जगाया। कहा कि मैं जा रहा हूं, कब लौटूंगा पता नहीं। वे तो इतना कहकर चले गये। मैं पूरी रात जागकर उनके लौटने की राह देखती रही। बाद में वह सारी घटना एकदम घूम गई कि वे कैसे बगीचे में जाकर उस दरख्त के नीचे बैठे होंगे। वह मुद्रा याद आने लगी। उस मुद्रा के ध्यान में आते ही मुझे लगा कि २ बजे रात को वह घटना घटी। जैसे ही मुझे रात दो बजे का खयाल आया मैंने उनसे यह सब कहा।

वे कहने लगे : "ठीक २ बजे घटना घटी। तू अब ठीक पकड़ने लगी।"

मैं फिर आश्चर्य से भर गई और उसी आश्चर्य से भरी सोने की कोशिश करने लगी, पर इतनी खुशी से भर गई थी कि नींद आना असम्भव हो गया था। बार-बार लगता कि सबको जाकर जगा दूं; परन्तु उठी नहीं, उसी तरह पड़ी रही। रात बहुत देर तक सो न सकी। फिर निद्रा में प्रवेश हुआ। दूसरे दिन सुबह उठी तो आनन्द से मेरा रोआं-रोआं नाच रहा था, इस महान रहस्योद्घाटन की मधुर स्मृति में। याद आता है, भगवान बुद्ध और बोधगया का बोधि-वृक्ष। और याद आता है, भगवान श्री रजनीश और भंवरताल, जबलपुर का मौलश्री वृक्ष।

कितने अद्भुत रूप से इतिहास दुहरता है। बोधगया का बोधि-वृक्ष पूरे विश्व के बुद्ध-प्रेमियों का तीर्थ है। और भंवरताल, जबलपुर का 'मौलश्री वृक्ष'। क्या हमने पहचाना था बुद्ध को ? क्या हम पहचान पा रहे हैं रजनीश को, अमृत को, आनन्द को, आलोक को ?

मानसेवी

सम्पादक : **अरविन्द कुमार**, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर
उप-सम्पादक : **आलोक पांडे, 'आकुल' राजेन्द्र**
व्यवस्थापक : **स्वामी धर्म सरस्वती**

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.

मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. 2957 P. P.

महावीर, बुद्ध, जीसस.....रजनीश !

महावीर की वीतरागता —

था मैं पानी —
बन गया नदी
बहा क्षिप्र गति से
जा मिला सागर में !

बुद्ध की उपेक्षा —

था मैं पानी —
न कुछ किया मैंने
सागर स्वयं दौड़ आया
मिल गया मुझ में !

जीसस की तटस्थता —

था मैं पानी —
बन गया वाष्प
उड़कर बना बादल
बरसकर मिल गया सागर में !

रजनीश की सर्वज्ञता —

था मैं पानी —
न कुछ किया किसी के प्रति
न गया सागर के पास
न आया सागर मिलने
स्वयं सागर बन बैठा !

— हर्षद एव० पटैल, डभोऊ

जन्म-दिवस विशेषांक

दिसंबर **युक्रान्द** १९७२